हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष-५२ अङ्क ३

राष्ट्र-रक्षा-अनुष्ठान के सम्प्रेरक
राष्ट्र-गुरु परम पूज्य
श्रीस्वामी जी महाराज

इस अङ्क में—

आचारो परमो धर्मः

आज की प्रार्थना

'वन्दे मातरम्' राष्ट्र-गीत पर विवाद क्यों?

कहाँ जाऊँ-एक आध्यात्मिक रूपक

श्रीमहा- विपरीत-प्रत्यंगिरा स्तोत्र (स-विधि)

वैरि-नाशक हनुमान ग्यारहवाँ

विद्या-प्राप्ति-प्रयोग

भारत-वर्ष के ५१ शक्ति-पीठ

पर्व-सूची

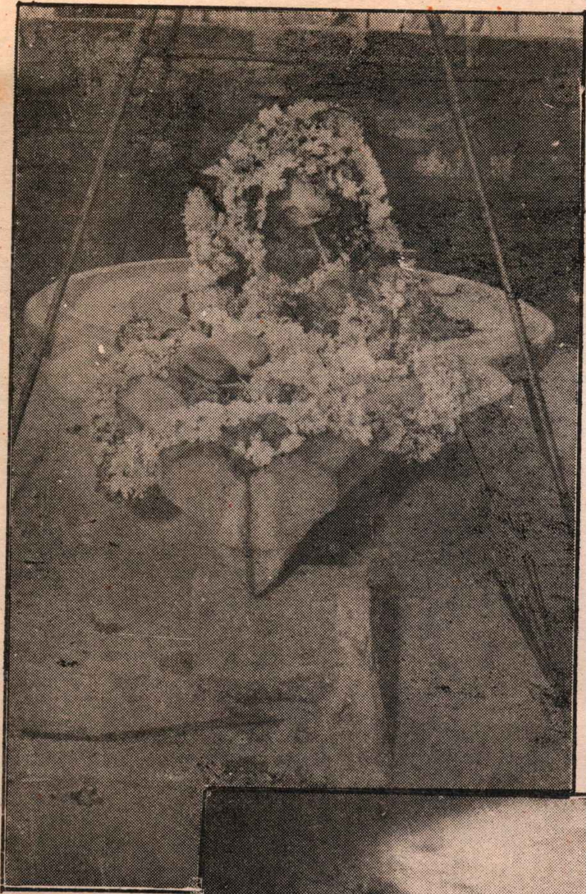

श्रद्धाञ्जलि

ब्रह्म-लीन
स्वामी जी
की
समाधि

प० पू०
स्वामी जी
के
अन्तिम दर्शन

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज–२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें ।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज–२११००६

वर्ष ५२] [अङ्क ३

ज्येष्ठ, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० जून, १९९३

* * *

जयति गुरु वन-खण्डेश्वर

* **श्री बलराम दुबे, लखनऊ (उ० प्र०)**

जयति जयति गुरु **वन-खण्डेश्वर** ब्रह्म-लीन गुरु-धाम ।
ज्योतिर्मय गुरु प्रकट विराजत, सतत-प्रहर हर याम ।।
हर कण - कण चैतन्य चराचर, गुरु - मय रूप अनाम ।
पञ्च-तत्त्व गुरु-मन्त्र-यन्त्र-मय, **'सिद्ध-पीठ'** अभिराम ।।
वायु विहग चर-अचर प्राण-मय, जपत मन्त्र गुरु-नाम ।
चरण - पादुका प्राण - प्रतिष्ठित, पावन **दतिया-धाम** ।।
बिना गुरु-मन्त्र लिए बिन देखे, गुरु-गुलाम बलराम ।
परिचय स्वर्ण-शिखर गिरि प्राची, हेम-किरण बालार्क ।।
भव्य शहर दतिया बगलामुखि, कनक-पीठ स्वर्णाभ ।
गुरु-पद त्राण चरण सद् साक्षी, सम्मुख करता प्रणाम ।।
सकल नियम-यम जप-तप वञ्चित, **नमन करत बलराम** ।।

इस अंक में

० आचारो परमो धर्मः ...	३७
० मन ! ले चल दतिया मुझको ...	६९
० मां बगलामुखी ...	७०
० आज की प्रार्थना ...	७२
० 'वन्दे-मातरम्' राष्ट्र-गीत पर विवाद क्यों ? ...	७३
० बोलो, सभी मिल वन्दे मातरम् ! ...	७६
० कहाँ जाऊँ ? ...	७७
० असत्य से सत्य की ओर ...	८२
० भारत के ५१ शक्ति-पीठ ...	८३
० श्री महा-विपरीत-प्रत्यंगिरा स्तोत्र ...	८५
० विद्या-प्राप्ति-प्रयोग ...	८९
० वैरि-नाशक हनुमान ग्यारहवाँ ...	९०
० हिन्दी सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ ...	९२
० 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' पटना की गोष्ठी ...	९६
० पर्व-सूची ...	९६

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी की पुण्य तिथि (२४ मई, ६३) के पावन अवसर पर—

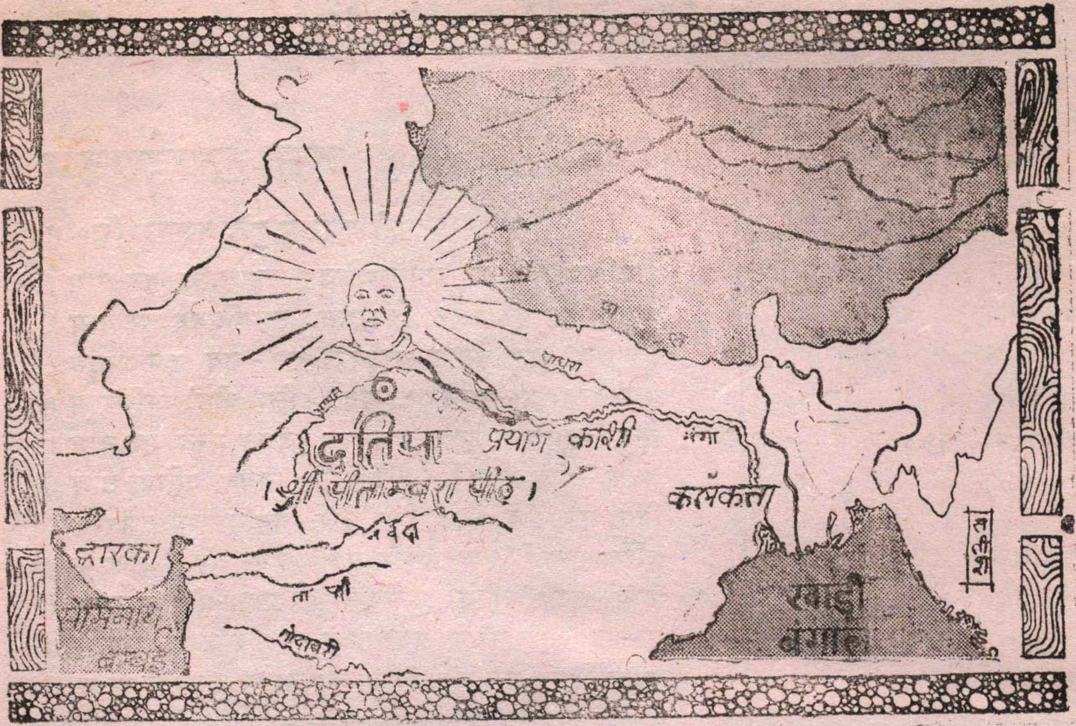

परम पूज्य स्वामी जी की कृति

'सिद्धान्त रहस्य'

से संग्रहीत

आचारो परमो धर्मः

मनुष्य का जीवन बहुत ही अमूल्य है। १. अर्थ, २. धर्म, ३. काम, ४. मोक्ष—इन चारों **पुरुषार्थों की** सिद्धि मनुष्य-जीवन में हो सकती है। परम पुरुषार्थ रूपी **परमात्मा की प्राप्ति** भी मनुष्य ही कर सकता है। **संसार-जाल** में उलझ कर मनुष्य इस तथ्य को नहीं जान पाता। न ही वह जान पाता है कि वास्तविक मार्ग क्या है? जिस पर चलते हुए वह अपने गन्तव्य-स्थल को पहुँच कर शान्ति-लाभ कर सके। **सद्-गुरु, सच्छास्त्र और सत्सङ्ग** ही इसे बता सकते हैं क्योंकि **सत्-सिद्धान्तों का परिचय** इन्हीं के द्वारा होता है। सत्-सिद्धान्तों में सबसे प्रधान आचरण है। प्रमुख आचरण इस प्रकार हैं—

१. अधिकार के बिना किसी विषय पर बोलने का आचरण व्यर्थ है और इससे व्यक्ति को कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

२. **वागिन्द्रिय का संयम** मनुष्य की बहुत सी आपत्तियों का निवारक होता है। इसलिए **मौन का अभ्यास** अत्यन्त आवश्यक है। वाणी से न बोलने का नाम मौन नहीं है। मौन मन की साधना है। वाणी से सम्बन्ध रखनेवाले विचारों के संयम का परिणाम ही मौन है।

३. **शब्द और अर्थ का बीज एवं अंकुर की तरह सम्बन्ध है।** प्रत्येक शब्द एक तथा अनेक अर्थों वाला होता है। जिस प्रकार अर्थ में विधि, निषेधात्मक व्यवहार होते हैं कि अमुक कार्य करना चाहिए, अमुक नहीं, वैसे ही शब्द के भी विषय में है। **सत्य, प्रिय, हित शब्दों का बोलना** उत्तम तथा **कटु, निरर्थक, निन्दात्मक शब्दों का व्यवहार** निषेध-कोटि में है। **सात्त्विक ज्ञान, योग, भक्ति, उपासना, दया, श्रद्धा, उपकार धर्म, देवता, ऋषि आदि विषयों को प्रकट करनेवाले शब्द** उत्तम कोटि के हैं। **राजा, धनिक आदि विषयों को प्रकट करनेवाले शब्द** मध्यम और **खाट, लोटा, घट, वस्त्र** आदि **विषयों को प्रकट करनेवाले शब्द** तृतीय श्रेणी के तथा **गाली-गलौज-विषयक शब्द** निषिद्ध कोटि के हैं। **उत्तम भावों को प्राप्त करने के लिए** विहित शब्दों के व्यवहार का अभ्यासी होना चाहिए। **मनुष्य का प्रथम परिचय** विहित शब्दों के व्यवहार से ही होता है।

४. **वेद, उपनिषत्, गीता, पुराण आदि ग्रन्थ**-समुदाय वाङ्मय के औचित्य और **चरम** विकास **के इतिहास हैं।** यथार्थतः इन्हें ही मनुष्य जाति का इतिहास कहना चाहिए। केवल उत्पत्ति, मरण आदि लौकिक साधारण बातों का ही विचार **इतिहास** नहीं कहलाता। **श्रीमद्-भगवद्-गीता** विचारों तथा शब्द-औचित्य का सर्व-श्रेष्ठ ग्रन्थ है। शब्द-औचित्य के ज्ञान के लिए **वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण** आदि ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिए।

५. किसी के विषय में, परोक्ष में या सम्मुख, अपनी **एक राय रखनी चाहिए।** यदि किसी **कारण-वश** अप्रिय सत्य न कह सकें, या सुननेवाला उसे सुनना ही न चाहे, तो किसी भी अवस्था में उसकी चर्चा मत करिए।

६. जिससे सम्बन्ध रखना हो, उससे **व्यवहार साफ-साफ रखना चाहिए।** यदि परिणाम में सुख की प्राप्ति हो और कथन में कटुता का प्रयोग कभी करना पड़े, तो कोई अनुचित नहीं है। इसके विरुद्ध आचरण करने से सम्बन्धी से **व्यवहार सदैव के लिए पंगु** बन जाता है। किसी ने आपके साथ अपकार किया, तो उससे किस प्रकार बदला लेवें या उसका अनिष्ट कैसे हो इत्यादि बातें अत्यन्त हानिकर परिणाम पहुँचानेवाली हैं। अतः इनसे बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

७. किसी के विषय में, दूसरे लोगों के विचार के अनुसार अपना मत स्थिर न करे। स्वतः पूर्ण परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा के बाद, विचार भी करना आवश्यक है।

८. कोई भी कार्य करना हो, तो सबसे पहिले—१. साधन, २. परिणाम, ३. लोक-कल्याण और ४. आत्म-कल्याण पर दृष्टि डालना चाहिए। इन चारों बातों में जिसकी कमी हो, उसे ही सर्व-प्रथम पूरा करने का उपाय करना चाहिए। इसमें विरोधी शक्ति यदि टक्कर ले, तो **शान्ति, क्षमा, विचार और आत्म-संयम** से उसे निष्फल करना चाहिए। यदि कार्य करने की भूमिका में **भोग, लोभ, गौरव, प्रतिष्ठा, दल-बन्दी और द्वेष** का स्थान होगा, तो कार्य दृढ़ नहीं हो सकता। अतः कार्य आरम्भ करने के पहले उक्त सूत्र का मनन करते हुए **चित्त-वृत्ति को सम करना चाहिए और समय पर आवश्यकीय कार्यों के करने का अभ्यासी बनना चाहिए।**

९. अपनी त्रुटि को माननेवाला ही सुधार कर सकता है। जो त्रुटियों को छिपाता है, वह बहुत-सी उलझनों को स्वयं उत्पन्न करता है, तथा अनेक झूठ उसे बोलने पड़ते हैं। इससे त्रुटियों का समुदाय बढ़ता जाता है और अन्त में वह सर्व-नाश को पहुँच जाता है।

१०. यह ध्रुव सत्य है कि बाह्य संसार से आशा रखनेवालों को संसार वही देता है, जो वह संसार के लिए करते हैं। इसके लिए कोई अदृश्य कारण मानना व्यर्थ है।

११. **व्यर्थ बक-वाद** में समय बिताना, दुर्व्यसनों में लगे रहना, **ताश आदि खेलों में रुचि** रखना, **निन्दा-कुचेष्टा** करते रहना—**निरुद्देश्य जीवनवाले मनुष्यों के लक्षण हैं** । **अल्पाहार, मित भाषण, दीनों की सहायता, परमात्मा में दृढ़ विश्वास, सत्य भाषण, निरपेक्ष सेवा-भाव, राग-द्वेष का त्याग और समस्त प्राणियों में प्रीति का होना अच्छे लक्षण हैं** । इन्हें धारण करने का यत्न करना चाहिए ।

१२. कोई भी कार्य शास्त्र-शिष्टानुमोदित होने से ही उसे मानने लगना ठीक नहीं है । जब तक स्वयं करके अनुभव न कर लिया जाए, तब तक 'अज्ञान' किसी-न-किसी कोटि में रहता ही है । जब तक अपना 'अनुभव' न हो, तब तक किसी सिद्धान्त का अनुयायी होना कभी लाभ-प्रद नहीं होता है । इसलिए किसी सिद्धान्त के गुण-दोष के विचार में जल्दी नहीं करना चाहिए । आज जो बात हमारे 'अनुभव' में आई है, सम्भवतः यथार्थ सत्य न होकर कल वह झूठी भी हो सकती है । इसलिए इस अधूरी जिम्मेदारी पर, बिना 'अनुभव' के कोई बात किसी को नहीं बताना चाहिए ।

१३. मनुष्य का शरीर सभी प्रकार की शक्तियों का अधिष्ठान है । **'योग'** की सहायता से मनुष्य जिस वस्तु को चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है । **'मन'** ही शरीर-रूपी पावर हाउस का मुख्य एञ्जिन है, उसी के द्वारा सबकी अभिव्यक्ति होती है । स्वर्ग, नरक, मोक्ष, सभी वस्तुएँ **'मन'** में ही रहती हैं । दृश्यमान सारा जगत् **'मन'** की ही कल्पना है । **'मन'** के शुद्ध होने पर, अच्छी बातें मनुष्य को स्वतः मिल सकती हैं । इसलिए **'मन'** को शुद्ध, पवित्र तथा एकाग्र बनाना ही उन्नति का प्रथम उपाय है ।

१४. **सात्त्विक भावों के उद्रेक** से सद्-विचार, ध्यान, उपासना, लोक तथा आत्मा का कल्याण करनेवाले शुभ कर्मों की प्रवृत्ति होती है । राजस, तामस भावों के रोकने के मुख्य उपाय **१ भजन, २ अभ्यास, ३ सत्सङ्ग** ही हैं । ये तीनों साधन **'योग'** के प्रधान कारण हैं । **'योग-मार्ग'** से चलनेवालों को इनका पालन करना चाहिए ।

१५. सद्-विचारों को चित्त में स्थिर करने का अभ्यास ही बुरे विचारों से बचने का प्रधान उपाय है । इसकी पूर्ण सिद्धि तभी होती है, जब बुरे विचार मनुष्य पर कितना भी प्रहार करें, परन्तु मनुष्य किञ्चित् भी अपने निर्णय से विचलित न हो । इसे **ब्रह्मास्त्र** भी कह सकते हैं क्योंकि यह उपाय किसी भी दशा में निष्फल नहीं होता । अतः इसका अभ्यासी बनना चाहिए ।

१६. **सहन-शक्ति (तितिक्षा)** को बढ़ाना चाहिए । इससे **विवेक और सद्-विचार की स्वतन्त्रता** प्राप्त होती है । **सहन-शक्ति** के प्राप्त होने पर शत्रुओं की शक्ति पराभूत हो जाती है ।

१७. **आहार की शुद्धि** से ही 'मन' और शुद्ध होता है । आहार के दोषों का विचार होना आवश्यक है । शुद्ध अन्न के ग्रहण से ही 'मन' शुद्ध होता है । 'मन' अन्न के सूक्ष्म अंश से बनता है । इसलिए विचारों की उन्नति चाहनेवालों को आहार-शुद्धि का स्मरण रखना चाहिए ।

१८. **मनुष्य की त्रुटियाँ, हठ और अकर्मण्यता** ही मनुष्य पर विपत्तियों का अवसर उपस्थित करती हैं । इसलिए आपत् - काल में इन्हें जानकर, इनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । ईश्वर-भजन तथा सत्सङ्ग द्वारा मनुष्य को इसमें सहायता प्राप्त हो सकती है, तथापि इसमें कर्त्तव्य मुख्य है क्योंकि बेकारी की अवस्था में ही मनुष्य दुर्विचारों का स्थान बनता है । पुनः उनसे ही मनुष्यों के दुःखों की उत्पत्ति होती है ।

१९. प्रत्येक मनुष्य के साथ कुछ - न - कुछ कर्त्तव्य का सम्बन्ध लगा हुआ है । कोई भी मनुष्य इस अनवरत संसार में बिना कुछ किए क्षण - मात्र नहीं ठहर सकता । फिर प्रत्येक कार्य का **'मन'** पर

अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे **संस्कारों की सृष्टि** होती है। **'मन'** को जो कार्य अधिक अच्छे लगते हैं, उनकी **वासना से तृष्णा** उत्पन्न होकर, उनके **फलों की प्राप्ति** के लिए मनुष्य व्यग्र होता रहता है। यह लौकिक प्रवृत्ति सभी मनुष्यों में है। इसे समझ कर, हम अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति का परिचय सरलता से प्राप्त कर सकते हैं और **'वासना'** अथवा **'तृष्णा'** से बच सकते हैं। **'तृष्णा'**-मूलक प्रवृत्ति शान्ति और सुख का हेतु नहीं है।

२०. **बुरे कर्मों से विरक्ति, वासनाओं का परित्याग, पूज्य पुरुषों में भक्ति, सत् - सिद्धान्तों का आचरण, सरलता, निष्कपट भाव की ओर विशेष रुचि और भोग में अरुचि** जब - जब हो, तब समझना चाहिए कि सत्सङ्ग का प्रभाव हो रहा है। यथार्थ सत्सङ्ग के यही लक्षण हैं। जिन अलभ्य अनुभवों को महात्मा लोग वर्षों में अत्यन्त कठिनाइयों से प्राप्त करते हैं, वे सत्सङ्ग में सुलभतया प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए ऐसे सत्सङ्ग की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

मन ! ले चल दतिया मुझको

श्री प्रेमशङ्कर सिंह 'प्राञ्जल', रायपुर [म० प्र०]

मन ! ले चल दतिया मुझको।
जहाँ रहती श्री पीताम्बरा मैय्या।
सिद्ध-विद्या, साधन-साध्या,
शैल-सुता अपराजिता।
जिसे पुकारते अपर्णा भी
जो कहलाती आनन्दा।
मन ! ले चल दतिया, मुझको।
जहाँ रहती, शत्रु-पराभव-कारिणी
स्तम्भन-विद्या-प्रदायिनी
न्यायालय में न्याय दिलानेवाली
श्री पीताम्बरा मैय्या।
मन ! ले चल, दतिया मुझको।

जहाँ मिलती है, दिव्य-दीक्षा।
जहाँ मिलती है, स्पर्श-दीक्षा।
जहाँ रहते श्री पीताम्बरा स्वामी।
मन ! ले चल उन चरणों में—
जहाँ आज भी रहते श्री पीताम्बरा स्वामी।
जो शान्त, प्रशान्त, योगी हैं।
जो धीर गम्भीर मनस्वी हैं।
जहाँ वेद-वेदान्त की ज्ञान-मयी धारा,
जहाँ दिव्य शाक्त-शाम्भवी-साधना,
जहाँ मिलता अनन्त क्षितिज को एक सहारा।
मन ! ले चल, दतिया मुझको।

माँ बगलामुखी

• श्री बलराम दुबे,
७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

* * *

पीले-पीले वसन हैं भूषन हू पीले - पीले,
सुमुखी विचित्र रूप आपनो दिखायो है।
झपटि गही है जीभ निज भक्त-शत्रु कर,
मारिबे को ताहि बेगि मुद्गर उठायो है।
थकित कियो है ताहि बार-बार त्रस्त करि,
बोलि न सकत वह, ऐस डर पायो है।
बगला तिहारो देखि अद्भुत स्वरूप यह,
साधक प्रसन्न-मन तोर यश गायो है।।

—'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी

* * *

अपने ही धुएँ में लिपटी हुई ज्वाल-माल !
देखता हूँ व्याकुल, विभुक्षित, विक्षिप्त हाल—
वृद्धा के हाथों में रिक्त एक सूप को,
अपने-ही-आपको निगलती हुई भूख को ।।
अपने ही लावा में कैद एक ज्वालामुखी—
माँगता सहारा कि—
अन्तस् की ज्वाला को मुक्त करो धूमावती ।।
तुमको ही कर्ज अब चुकाना है अपना भी—
पुत्र का, पत्नी का, पुत्र-वधु—सबका ही ।।
फेंको वह सूप-चिह्न—चाकरी का धूमावती !
अन्तस् की ज्वाला को शान्त करो, बगलामुखी ! ।।
पीत-वर्ण सुन्दर हरिद्रा-सरोवर में—
अँजुरी में अर्घ्य लिए—
करता हूँ आवाहन आज तेरा बगलामुखी !
आत्म-रस-सरोवर में लेता हुआ जन्म—
एक अंकुर का पीत-कलेवर हो तू !
हल्दी के पौधे की मादक सुगन्धि—
केशर तू, पीत-पराग हो बगलामुखी ! ।।
मिट्टी की भीनी सुगन्धि हो, रङ्ग हो—
श्रीकृष्ण की आँखों में उदय की रोशनी !
पल भर की झलक, आभास पीताम्बरा—
धरती के गर्भ से उगता भविष्य !
हरिद्रा-सरोवर पर बीता इतिहास—
वर्तमान की यज्ञ-अनुभूति हो, बगलामुखी ! ।।
अहम् के त्याग की पहली पृष्ठ-भूमि—
पिता की चौखट पर रस्म कन्या-दान !
लहराएगी सृष्टि कहीं और किसी आँगन में !
अँजुरी-भर फूलों का पीला पाथेय,
एक जीवन-संग्राम में अधरों पर हँसी,
और दुल्हन के पाँवों में मुखर पाजेब—
शाश्वत सृष्टि-बीज की पालिका हो, बगलामुखी !।।
वीरों के सिर पर हो केशरिया पाग —
तूफानी ज्वार में छोटी-सी नाव।
पतवार लिए हाथों का वृहद् उत्साह--

झंझा की छाती पर गाता मल्लाह—
कड़ी हो गीतों की, लड़ी हो पुष्पों की,
सागर के गर्भ में समाए शहीदों की,
समाधिस्थ वीरों की—
पीली पहचान हो, बगलामुखी ! ।।
गूँजती हुई गीता, तलवार की खनक—
प्रसिद्ध हल्दी-घाटी की छाती प्रशस्त !
राणा की तू कर्म-भूमि हो, बगलामुखी !
दुश्मनों की फौज की पकड़े हुए जीभ—
एकाकी वीर-तलवार हो राणा की !
आन हो, लड़ते हुए तूफानी वीर की—
शान हो, म्यान से निकली तलवार की !
एक हस्त वात-क्षोभ दानवी तूफान की—
जीभ खींच, पकड़े हुए !
एक हस्त मुग्दर से मार, शान्त करते हुए—
निकलो, माँ ! पावन हरिद्रा-सरोवर से !
करता हूँ आवाहन, अम्ब ! सिद्ध बगलामुखी ! ।।
बढ़ चलो—पैंतरे में, पकड़े हुए जीभ को—
शमन करो, अरियों के तूफानी वेग को—
मुग्दर घुमाओ, डराओ, भगाओ !
विघ्नों का कर्ज अब,
उतारो माँ बगलामुखी !
नहीं है शेष समय, कुटिल परिहास का—
निकलो पीताम्बरा !
विष्णु-शक्ति बगलामुखी !
भण्डासुर-फौज बड़ी लम्बी है, तगड़ी है—
प्रलय-तूफान को उड़ा न ले असमय ही ! ।।
चमको पीताम्बरा ! तड़ित सौदामिनी-सी ।
बीरा, वीराङ्गना, शौर्य-मयी सिंहनी !
पकड़े रहो, दैत्यों और दुश्मनों की जीभ तू—
गदे से मारती, डराती हुई, बगलामुखी ! ।।
ज्वलित हवन-कुण्ड में, गिरते पीत पुष्पों का—
बदला लो, अनवरत बहते हुए अश्रुओं का !
अरियों की आँखों में, पीलिया के रोग-सा—
फैलो पीताम्बरा ! समर्थ सिद्ध बगलामुखी ! ।।
कानों से बहते हुए—
पागल गजेन्द्रों के—
मद की तरङ्गों में—
कागज की नाव पर, सवार त्रस्त बैठा हूँ !
रक्षा करो, नौका—पतवार बनो बगलामुखी ! ।।
अर्जुन के रथ पर सवार एक वीर—
तपस्या की सिद्ध पहचान हो, बगलामुखी !
शक्ति हो, स्तम्भन की—
अपनी परिधियों में घूमते नक्षत्रों की—
पिंजड़े से बाहर न जा सके पृथ्वी—
धुरी हो शाश्वत तू ! सृष्टि-रथ-सञ्चरण की ।।
घड़ी—एक अदृश्या !
कि डरते रहें तारे-गण—
घूमते रहें तेरी परिक्रमा में अश्व !
न खोल सकें, आँखों पर बँधी हुई पट्टी—
हाथों में उठे हुए मुग्दर का डर ।।
सहज की डोर पर रुकी हुई साँसों की—
चढ़ते सोपानों पर उखड़े उश्वासों की—
शक्ति हो, स्तम्भन तू ! प्राण-वन्त छाती की—
कि रोककर पाँव सुस्ता सकें हाथी भी ।।
अनन्त कोटि फनों से—
निकला हुआ जहर भी—
बिछता है स्तम्भित हो !
सेज मृदुल सरसिज-सी—
कि रख सको पाँव तू !
प्रशस्त शेष-नाग-वक्ष—
झेल सकें प्रलय-तूफान भगवान् भी ।।
जहरीला काल-कूट फनों से निकला हुआ—
दर्द अभिशप्त सिन्धु-वक्ष पर पिघला हुआ—
चीखता-चिल्लाता ज्वार, प्रलय-राग गूँजता !
कि सुन सकें आवाज मूक बधिर भगवान् भी ।।
(क्रमशः)

आज की प्रार्थना

• **मातृ-चरणों का मधुव्रत**

आज व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और समाज सबके लिए एक ही प्रार्थना कर्तव्य लगती है—**"माँ सद्-बुद्धि दो।"** वास्तव में सबसे बड़ा महा-मन्त्र, सबसे उत्तम प्रार्थना, सबसे सुन्दर आकांक्षा यही है—**"माँ मन को निर्मल कर।"** सिद्धि, सामग्री, ऐश्वर्य्य लेकर क्या होगा, जब तक बुद्धि ही ठिकाने न हो। वह तो पागल के हाथों में पिस्तौल जैसा होगा। आज मनुष्य ने प्रकृति की कैसी शक्तियों को वशीभूत किया है। आकाश, उसका राज-मार्ग बना है। बिजली, उसकी सन्देश-वाहिका है। नदियाँ, उसकी चक्की चलानेवाली दाइयाँ हैं। दिन को रात और रात को दिन बनाने की कला उसके हस्तामलक है। अठारह अक्षौहिणी सेना के नाश करने की शक्ति को प्राप्त करने के लिए अर्जुन आदि महा-रथियों को न मालूम कितने दिव्यास्त्रों को सिद्ध करना पड़ा था, उस पर भी अठारह दिनों का युद्ध हुआ। आज मनुष्य के हाथ में वह शक्ति है कि एक क्षण में लाखों की आवादी को मर-घट से भी बढ़कर निर्जन बना डाले! फिर भी क्या वह आज सुखी और सुरक्षित है या स्वयं अपने हाथों अपना संहार करने में लगा है?

बात बहुत पुरानी है। असुरों की साधना, सिद्धि और ऐश्वर्य्य का क्या कहना! इन्द्रादि देवता उनके पसङ्गे में भी आते थे क्या? परन्तु असुरों की सम्पूर्ण साधना और सिद्धि जगत् के उत्पीड़न और अन्त में अपने भी सर्व-नाश के हेतु ही तो बनती थी न! कारण असुरों ने शक्ति, सिद्धि, ऐश्वर्य का वरदान माँगा था, शुद्धि का नहीं। आज असुरों की भाँति अधिकांश मानवता भी यही माँग रही है।

माँ सिद्धि तो देती है, परन्तु बुद्धि-स्वातन्त्र्य देकर वह मनुष्यों को हठात् किसी रास्ते ले जाना नहीं चाहती। वह चाहती है मनुष्य स्वयं **'विवेक'** से काम ले, **'हित-अनहित'** की पहचान करे और **'प्रेय'** को छोड़कर **'श्रेय'** का अनुसन्धान करे। मनुष्य, चकाचौंध में पड़ता है और सोचता है अमुक सामग्री, अमुक सिद्धि, अमुक ऐश्वर्य्य मिलने से हम कृतार्थ और चिर सुखी होंगे, परन्तु अन्त में दुःख-ही-दुःख उसके हाथ आता है। बात ऐसी है कि मनुष्य देख ही कितना सकता है? उसे अपने वास्तविक हिताहित का ज्ञान कब होता है! यदि वह बुद्धि को प्रकाशित न करे, तो किससे हम उसको उज्ज्वल कर सकेंगे?

उपनिषदों में शरीर की उपमा **'रथ'** से और **'आत्मा'** की **'रथी'** से दी गई है। **'इन्द्रियाँ'** उस 'रथ के घोड़े' हैं। **'बुद्धि'** सारथी है और **'मन'** लगाम है। इन्द्रिय-रूपी घोड़े बड़े अड़ियल, बड़े आनदार हैं। यदि बुद्धि-रूपी सारथी, कहीं जरा बेखबर हुआ या लगाम लचर निकली, तो ये घोड़े सर्व-नाश की अतल खाई में सबको सरपट ले भागें। अर्जुन ने इस भेद को समझा था, इसीलिए दुर्योधन और अर्जुन के सामने भगवान् ने एक ओर केवल अपने आपको रखा, तो अर्जुन को चुनते देर न लगी। कहा—'महा-राज! मुझे सेना न चाहिए, मैंने तो आपको ही चुन लिया। आप लड़ेंगे नहीं, यही शर्त है न! अच्छा, वह भी मुझे स्वीकार है। मेरे रथ की बागडोर सँभालिएगा। बस, और कुछ नहीं चाहिए मुझे।'

समर्थ गुरु रामदास ने लिखा है—**'हलचल में सामर्थ्य है।'** उसी तरह साधना में 'सिद्धि' निहित है, परन्तु उसको प्रग्रह में कौन रखेगा! 'मन' तो स्वयं उन्मत्त है और बुद्धि विपरीत है। न तो व्यक्ति का और न समाज का दुःख केवल सिद्धि या समृद्धि की वृद्धि से दूर होनेवाला है। उसके लिए पहली शर्त है **'बुद्धि' शुद्ध और 'मन' निर्मल हो।** नहीं तो वरदान भी अपने और संसार दोनों के लिए अभिशाप बनकर रहनेवाला है। प्राचीन और नवीन दोनों ही इतिहास इसके उदाहरणों से भरे पड़े हैं।

वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम् !
सुजलां सुफलां मलयज-शीतलाम् ।
शस्य - श्यामलां मातरम् !
वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम् !
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम् !
फुल्ल-कुसुमित-द्रुम-दल-शोभिनीम्,
सुहासिनीं सु - मधुर - भाषिणीम् !
सुखदां वरदां मातरम् !
वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम् !

वन्दे मातरम्

'राष्ट्र-गीत' पर विवाद क्यों ?

श्रीयुत भवानीशङ्कर सेनगुप्त, आजादनगर, प्रयाग

[**'चण्डी' मई, ६३** के अङ्क द्वारा पवित्र गीत **'वन्दे मातरम्'** के विरोध में हो रहे झूठे प्रपञ्च से पाठक परिचित हो चुके हैं। यहाँ, 'चण्डी' मासिक पत्रिका के वयो-वृद्ध चित्रकार **श्रीयुत भवानीशङ्कर सेनगुप्त** के विचार प्रस्तुत हैं। पवित्र गीत **'वन्दे मातरम्'** के प्रति लगाये जा रहे झूठे आरोपों से मर्माहत होकर आपने सम्भवतः हिन्दी भाषा में पहले-पहल कुछ लिखने का निश्चय किया है। हम आपके हृदय से आभारी हैं।—सं०]

हमारे देश में आज दो पीढ़ियों के लोग हैं। एक पुरानी पीढ़ी के वयोवृद्ध लोग, जिन्होंने अंग्रेजी दासता का युग देखा है, उसके अपमान और यातनाओं को सहा है। साथ ही, गुलामी के लाञ्छन से देश को मुक्त कराने के लिए महा-मन्त्र **'वन्दे मातरम्'** से प्रभावित होकर एक बहुत बड़े जन-समाज को सङ्घर्ष-रत देखा है। 'देश-प्रेम-मय' ऐसे समाज के लिए तब **'वन्दे मातरम्'** मात्र एक गीत नहीं था, अपितु एक महा-मन्त्र और प्रेरणा का शाश्वत स्रोत था।

दूसरी ओर हमारे देश में, नई पीढ़ी के लोग हैं। इन्होंने बचपन से ही अपने आपको एक ऐसे देश में पाया है, जो स्वतन्त्र अवश्य है, किन्तु मानसिक रूप से गुलामी के दाग को अभी तक पूरी तरह मिटा नहीं पाया है।

ऐसी परिस्थितियों में, परीक्षा की घड़ी में जहाँ पुरानी पीढ़ी के लोग कुछ अधिक न कर पाने के कारण प्रायः निराश हो जाते हैं, वहीं नई पीढ़ी के लोग कर्म-क्षेत्र में होते हुए भी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होते जा रहे हैं। वास्तव में, हमें आज न तो निराश होना है और न ही किंकर्त्तव्य-बिमूढ़, अपितु प्राण-पण से सही रास्ता ढूंढ़ निकालना है। इस कार्य में, जो भी विरोधी तत्त्व सामने आएँ, उन्हें पूरी तरह नङ्गा करके, अटल निष्ठा और आत्म - विश्वास के साथ अपने देश को मानसिक गुलामी से मुक्त कराना है। कर्त्तव्य की इस घड़ी में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि **'वन्दे मातरम्'** एक राष्ट्र- गीत ही नहीं था, अपितु सच्चे अर्थों में देश को स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर बनाने का अद्भुत प्रेरणा-स्रोत था। आज भी, कितना अच्छा लगता है, जब **प्रात्यहिक** 'विविध-भारती' या **दूर-दर्शन कार्य-क्रम** का आरम्भ इस गीत के साथ होता है। इस गीत की मिठास, सुललित झङ्कार और सुर-ताल-लय में निबद्ध अनुपम शब्दावली हमें आज भी नव-जागरण के साथ-साथ सुखद सम्भावनाओं की ओर ले जाती है। तब, हमारे कानों में दिन भर यह वाणी गूँजती है कि हमें जो भी कार्य करना है, वे सभी देश-मातृका की सेवा के लिए ही करना है।

ऐसे गीत का, जो देश-सेवा का स्वतः-स्फूर्त्त पाठ पढ़ाता है—देश-सेवा के लिए हृदय को झकझोरता है, अगर लोग विरोध करने लगें, तरह-तरह के झूठे आरोप लगाकर उसको दुत्कारने-फटकारने लगें, तो देश-प्रेम या देश-सेवा के पुनीत भाव कहाँ से प्रस्फुटित होंगे ?

स्वतन्त्रता से पूर्व कुछ लोगों द्वारा निहित स्वार्थ-वश **'वन्दे मातरम्'** पवित्र गीत का विरोध हुआ था और यह भी सच है कि यह विरोध एक विशेष सम्प्रदाय के लोगों द्वारा ही हुआ था। इसी शृङ्खला में एक कड़ी तब और जुड़ गई, जब १४ फरवरी, १९९३ को **दैनिक जन-सत्ता में शम्सुल इस्लाम** द्वारा लिखित निबन्ध—**'राष्ट्र-गान क्यों नहीं बन सका यह गीत'** पढ़ने को मिला।

इस लेख में लेखक ने लिखा है—'आजादी **की लड़ाई के दौरान ही 'वन्दे मातरम्' और 'जन-गण-मन' के बीच राष्ट्र-गान होने का जो विवाद उठा था, वह आज फिर से खड़ा हो गया है !'**

हाँ, हाँ, क्यों न हो ? यदि हृदय में देश-प्रेम या स्व-देश के प्रति थोड़ी भी कृतज्ञता होती, **तो स्वप्न में** भी ऐसी बात न आती। फिर, **'वन्दे मातरम्'** के विरोध में खड़ा किसको किया ? **'जन-गण-मन'** को ! जैसे कुरु-क्षेत्र के मैदान में भीष्म पितामह को पराजित करने के लिए रथ के आगे, 'शिखण्डी' को बैठाया गया था ! ताकि पितामह अस्त्र-शस्त्र त्यागकर मुँह मोड़ लें ? अगर तर्क-युद्ध छिड़ जाए, तब **'जन-गण-मन'** को **'राष्ट्र-गान'** के रूप में मान्यता तो मिल ही चुकी है। इसलिए तर्क-युद्ध से दूर रहकर शान्ति बनाए रखना चाहिए। वातावरण को देश-प्रेम-मय करने की अपेक्षा विक्षुब्ध और दूषित करने से क्या लाभ ?

उक्त लेख में लेखक स्वयं लिखता है—'आजादी के **बाद जब राष्ट्रीय-गान के चयन का सवाल सामने आया, तब संविधान सभा में एक समिति बनाकर अपनी रपट संविधान-सभा-अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद के सामने रक्खी और उन्हें अन्तिम निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार दिया। भारत के प्रथम राष्ट्र-पति डा० राजेन्द्रप्रसाद का निर्णय—'जन-गण-मन' को राष्ट्र-गान तथा 'वन्दे मातरम्' को राष्ट्र-गीत के रूप में सम्मान देने का था (१४ जनवरी, १९५०)।'**

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रथम राष्ट्र-पति के इस निर्णय की अवहेलना या विरोध करना क्या किसी भी भारतीय नागरिक के लिए उचित है ? दुःख तो इस बात का है कि आज हमारे अन्दर यह औचित्य-बोध, नैतिकता और निष्ठा हैं कहाँ ! आज हम छोटी-छोटी बात पर अपनी प्राचीन परम्पराओं और आदर्शों को अपमानित करने से नहीं चूकते। व्यक्ति-गत स्वार्थ या अपने सम्प्रदाय के अहङ्कार की तुष्टि के लिए हम कुछ भी कर सकते हैं ! सच को गुप्त रखकर झूठ का खूब जोर-शोर से प्रचार भी कर सकते हैं !!

प्रमाण के लिए देखिए, उक्त लेख में लेखक ने कहीं भी **'मुस्लिम लीग'** तथा **मुहम्मद अली जिन्ना** के नाम का उल्लेख नहीं किया, जबकि उन्होंने ही सर्व-प्रथम सन् १९३७ में **'वन्दे मातरम्'** का **जबर्दस्त** विरोध किया था।

यही नहीं, इस सत्य से पूर्णतया अनजान बनते हुये लेखक ने एक जगह यह लिखा है कि—**'कांग्रेस से जुड़े कुछ मुसलमानों का कहना था कि इस गीत में राष्ट्र-भक्ति एक विशेष धर्म की पूजा-उपासना के सन्दर्भ में अभिव्यक्त की गई है।'**

जबकि सच यह है कि बँटवारे की भावना से मुस्लिम सम्प्रदाय को भ्रमित करने के उद्देश्य से सरासर गलत और तथ्य-हीन आरोप उस समय मुस्लिम लीगियों ने लगाए थे और सन् १९३७ में

कलकत्ते के अधिवेशन में कांग्रेस ने इन आरोपों को नकारते हुए राजनैतिक सभाओं में गाए जानेवाले **'वन्दे मातरम्'** गीत के अंश को पूर्णतया निर्दोष मानते हुए उसे तभी 'राष्ट्र-गीत' घोषित कर दिया था।

मातृ-भूमि के रूप में देश की कल्पना हमारी प्राचीन परम्परा रही है। अंग्रेजों ने भी इस कल्पना को मान्यता दी और अपने देश को 'मदर-लैण्ड' कहा। हमारे देश में तो जननी और जन्म-भूमि को **'स्वर्गादपि गरीयसी'** अर्थात् स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। जैसे ममता-मयी माँ दुग्ध के रूप में खून से सींच-सींच कर सन्तान का पालन-पोषण करती है, उसी तरह देश-मातृका से हमें केवल अन्न-वस्त्र और धन-सम्पदा ही नहीं, सुख-शान्ति, विद्या-बुद्धि, शक्ति-भक्ति—सभी कुछ वरदान के रूप में मिलती हैं। **'वन्दे मातरम्'** गीत में इन्हीं भावनाओं का प्रतीकात्मक और उपमा-प्रधान सजीव चित्रण है, किन्हीं देव-देवियों का नहीं। इसी सजीव चित्रण के भ्रामक विश्लेषण द्वारा मुस्लिम सम्प्रदाय को कुछ साम्प्रदायिक लोगों ने इस पवित्र गीत के विरोध में खड़ा किया था। फलतः राज-नैतिक सभाओं में **'वन्दे मातरम्'** गीत की प्रारम्भिक ६/७ पंक्तियों को ही गाया जाने लगा; जिनमें प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन है और जो शुद्ध संस्कृत में हैं।

'वन्दे मातरम्' गीत की प्रारम्भिक ६/७ पंक्तियों को पढ़कर देखें, जिन्हें 'राष्ट्र-गीत' के रूप में स्वीकृति मिली हुई है। इन पंक्तियों में कहीं भी मूर्त्ति-पूजा की भनक नहीं है। बहुत दुःख की बात है कि अब इस संक्षिप्त रूप पर भी कुछ साम्प्रदायिक नेता-गण अपना रोष प्रकट कर रहे हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में केवल आरोपों की बौछार ही नहीं, अपितु तरह-तरह के तथ्य-हीन तर्कों से **'वन्दे मातरम्'** गीत को बदनाम करने का प्रयत्न कर रहे हैं। जैसे, यह गीत **जन-गण-मन** की अपेक्षा आधा संस्कृत-आधा बँगला में है; यह गीत उत्तर भारत में ज्यादा लोक-प्रिय नहीं हुआ; या भाषा-गायन आदि की दृष्टि से यह गीत **'जन-गण-मन'** की अपेक्षा कमजोर है आदि-आदि।

लोक-प्रियता, या गायन आदि की दृष्टि से आक्षेप तो सरासर झूठे हैं ही, साथ ही भाषा की दृष्टि से जो आक्षेप किया गया है, वह भी सरासर झूठा है क्योंकि **'वन्दे मातरम्'** के जिस संक्षिप्त रूप को मान्यता मिली है, उसमें बँगला भाषा का नामोनिशान नहीं है, सभी पंक्तियाँ पूर्ण-तया संस्कृत में हैं, जब कि **'जन-गण-मन'** सम्पूर्णतः बँगला भाषा में ही था और संक्षिप्त रूप में भी वह बँगला भाषा में ही है। जैसे **'तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे, गाहे तव जय-गाथा'**—बोलों में **'तव'**, **'नामे'**, **'जागे'**, **'माँगे'**, **'गाहे'**—यह बँगला का प्रयोग नहीं, तो और क्या है?

भाषा और प्रस्तुति की दृष्टि से देखें, तो **'जन-गण-मन'** में एक आपत्ति-जनक शब्द 'सिन्धु' भी है। भारत के विभाजन के बाद भी क्या सिन्धु-प्रदेश भारत में ही है?

'वन्दे मातरम्' गीत की रचना के सम्बन्ध में उपर्युक्त लेख में लेखक ने स्वयं ही लिखा है कि—**'१९०५ में कर्जन की बङ्गाल-विभाजन की घोषणा ने इस गीत को अंग्रेज-विरोधी लड़ाई का प्रतीक बना दिया। बङ्गाल ही नहीं, बल्कि धीरे-धीरे यह गीत सारे देश का भी राष्ट्रीय मन्त्र बन गया।'**

सभी जानते हैं कि असंख्य स्वतन्त्रता-सेनानियों को इस गीत ने देश के लिए मर मिटने के लिए प्रेरित किया और यह क्रम स्वतन्त्रता-प्राप्ति की पूर्व-सन्ध्या तक जारी रहा। तभी तो इस गीत के रचयिता को मन्त्र-दाता ऋषि के रूप में ख्याति मिली!! और देवी चौधुरानी, आनन्द-मठ जैसे

कई उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए उन्हें साहित्य-सम्राट् भी माना गया। फिर, इस गीत पर लांछन क्यों लगाए जाते हैं ?

उक्त लेख के अन्त में लेखक यह भी लिखता है कि—'**बङ्ग-दर्शन' पत्रिका का सम्पादन करते समय (१८८५ ई०) इस गीत की रचना की गई। उस पत्रिका में यह गीत पहली बार छपा भी था। उसके सात साल बाद (१८९२ ई० में) जब बंकिमचन्द्र जी का उपन्यास 'आनन्द-मठ' छपा, तो यह गीत उसमें शामिल किया गया।**' प्रश्न उठता है कि इससे क्या हुआ ? **'आनन्द-मठ'** इतना गिरा हुआ उपन्यास तो है नहीं कि उसमें शामिल कर देने से **'वन्दे मातरम्'** गीत पतित हो गया ! **'आनन्द-मठ'** एक ऐतिहासिक उपन्यास है और अपनी जगह पर बिल्कुल सही है। उस उपन्यास पर भी जो आरोप लगाए जा रहे हैं, वे नितान्त झूठे हैं, जिन्हें हम आगे किसी लेख द्वारा दिखाने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ तो हम यह कहकर अपनी लेखनी को विश्राम देंगे कि **'वन्दे मातरम्'** गीत पूरा-का-पूरा निर्दोष है, देश-मातृका की सेवा के लिए शाश्वत प्रेरणा-स्रोत है। जो लोग अपने क्षुद्र स्वार्थों या अहङ्कार-वश इसके अपमान या इसकी अवहेलना का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, वे अपने हाथों उसी डाल को काट रहे हैं, जिस पर वे बैठे हैं। जब कभी देश को 'देश-प्रेम' की ज्वाला की आवश्यकता पड़ेगी, तब देश को **'वन्दे मातरम्'** गीत को गाना होगा; जब किसी व्यक्ति को 'देश'-प्रेम में डूबना होगा, तब उस व्यक्ति को **'वन्दे मातरम्' —'वन्दे मातरम्'**—गाना ही होगा।

बोलो, सभी मिल वन्दे मातरम् !

• पं० भगवतप्रसाद शुक्ल, साहित्य-शास्त्री

बोलो, सभी मिल शान्ति-दायक मन्त्र वन्दे मातरम्।
सङ्कट-निवारक, कष्ट-नाशक, तन्त्र वन्दे मातरम्॥
चर या अचर हों, जगत् के जिस बात को कहते सभी।
हैं दैत्य-दानव-देवता, भूले नहीं जिसको अभी॥
आकाश में, पाताल में, भू-लोक पर भी जब कभी।
ध्वनि एक है छाई हुई, बस मन्त्र **वन्दे मातरम्**॥
बोलो, सभी मिल शान्ति-दायक मन्त्र वन्दे मातरम्॥
तब मनुष्य हो हम क्यों न जानें कर्म निज भूले हुए।
मद-मोह में उन्मत्त होकर, दम्भ में फूले हुए॥
विषय पी विषय, मद-वासना के जाल में भूले हुए।
कहते नहीं हैं प्रेम से शुभ मन्त्र **वन्दे मातरम्**॥
बोलो, सभी मिल शान्ति-दायक मन्त्र वन्दे मातरम्॥
भेद को तुम भूल जाओ, एक स्वर से सब कहो।
होकर करोड़ों विश्व में, पर-तन्त्र होकर क्यों रहो ?॥
तुम स्वावलम्बी सब बनो, नित कष्ट को सुख से सहो।
बन कर्म-योगी, यह कहो सब मन्त्र **वन्दे मातरम्**॥
बोलो, सभी मिल शान्ति-दायक मन्त्र **वन्दे मातरम्॥**

एक आध्यात्मिक रूपक—

कहाँ जाऊँ ?

• पण्डित ज्वालाप्रसाद तिवारी

"शहर के सभी मन्दिर दिखाए। आस - पास के गाँव भी न छोड़े। फिर तुझे मैंने मथुरा जी, काशी जी, प्रयाग - राज, हरद्वार तथा अन्य छोटे - मोटे 'तीर्थ' घुमाए। इतने पर भी जब तू सन्तुष्ट न हुआ, तो बदरी-नाथ, केदार-नाथ, जगन्नाथ-पुरी और रामेश्वरम् तक ले गया। परन्तु तेरे बचपन का 'स्वभाव' न छूटा। पेड़ा दिया, तो बरफी माँगी। बरफी दी, तो लड्डू! इन सब बातों का मतलब क्या है? मैं तो काफी परेशान हो चुका। आज आ, बैठ। ध्यान-पूर्वक सुन। कुछ सोच-समझ ले। उसके बाद मुझे बतला दे। मनुआँ, अब तू कहाँ चलेगा और मैं कहाँ-कहाँ तेरे साथ जाऊँ ?"

मनुआँ बोला—मैंने तो सब सोच - समझ लिया है। जब तक दिन है, मैं तो घूमूँगा ही, चाहे आप मेरे साथ चलें या न चलें।

"अच्छा, यह बात है! मैं चलूँ या न चलूँ—तो भला बता, मैं आसन लगा कर यदि बैठ गया, तब भी तू दिन भर घूमता ही रहेगा क्या ?"

मनुआँ बोला—हाँ, मैं घूमता ही रहूँगा।

"ठीक कहता है। दिन में कुछ - न - कुछ तुझे 'प्रसाद' मिलता ही रहेगा। अरे, जब दिन ढल जाएगा और रात आएगी, तब तुम क्या करोगे ?"

मनुआँ बोला—करूँगा क्या ? आनन्द-पूर्वक सोऊँगा!

"ठीक कहते हो। तेरा 'दोष' ही क्या ? तू इतना चञ्चल है कि तुझे कुछ भी पता नहीं।"

मनुआँ बोला— क्या कहा आपने ? पता नहीं! मैं तो सब जानता हूँ।

"सब जानते हो, तो भला बतला, दिन ढल जाने के बाद यदि रात में भूख लगी। तब फिर ?"

मनुआँ बोला—तब फिर क्या ? मैं तो सोता रहूँगा। भला मुझे भूख कैसे लगेगी ?

"भूख कैसे लगेगी, तू तो सोता रहेगा! यही समझ! मैं जो कहता हूँ, सुन ले और समझ ले। सोती होगी तेरी चारपाई। और तू मुझे ही तङ्ग करेगा, रोएगा और कहेगा 'कुछ तो करो।' भला रात में मैं क्या कर लूँगा। दिन में तूने मेरी सहायता न की। मैंने बिना तेरी सहायता के कुछ करने का प्रयत्न किया। लेकिन तू तो जानता ही है कि मैं तो तुझे बार-बार ढूँढ़ने में लग जाता हूँ। तू जब साथ होता है, तो मुझ में 'शक्ति' आ जाती है, कारण तुझ में पर्याप्त 'शक्ति' है। तेरी यदि सहायता मिल जाय, तो मैं इतना कर दूँगा कि मैं और तू दिन समाप्त हो जाने पर सोवेंगे—'आनन्द' में; मैं 'मैं' में और तू 'मुझ में'। परन्तु यह उस समय होगा, जब तू मेरी सुनेगा।"

मनुआँ मुँह फुलाकर बोला—तो क्या मैं घूमूँ नहीं, कुछ देखूँ नहीं ?

"मैं तो यह नहीं कहता कि तुम घूमो नहीं, कुछ देखो और सुनो नहीं। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि तू घूम - फिर भी ले, परन्तु मेरे साथ बैठकर जो असली काम है, उसको पहिले कर ले।"

मनुआँ बोला—मेरी समझ में यह कुछ नहीं आता। मैं नहीं मानता आपकी एक भी बात।

"अच्छा मनुआँ, तू ऐसे नहीं मानेगा। यदि तुझमें गम्भीरता होती, तो तू सबका ही काम सिद्ध करता। अभी मेरे पास एक और अस्त्र है। मैं उसी से तुझे मना लूँगा।"

मनुआँ बोला—आप मुझे तङ्ग क्यों करते हैं ? मुझे घूमने-फिरने क्यों नहीं देते ?

"मैं जानता हूँ, तुलसीदास जी ने भी कहा है कि **बिन भय होय न प्रीत**।"

मनुआँ बोला—आप मुझे धमकाते हैं ! आपका कौन-सा अस्त्र शेष रहा ?

"अस्त्र ? ले, बतलाए देता हूँ। चार अस्त्र हैं—१ साम, २ दाम, ३ दण्ड और ४ भेद। तीन का प्रयोग कर चुका परन्तु तेरी समझ में कुछ न आया।"

मनुआँ बोला—कौन से अस्त्रों का आपने प्रयोग किया, जिनका प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ा ?

"जब मैंने तेरी इच्छा के अनुसार काम किया; सब मन्दिर दिखाए, वह 'साम' अस्त्र था। फिर मैं आसन लगाकर बैठ गया, वह 'भेद' अस्त्र था। इसके पश्चात् 'दाम' अस्त्र का प्रयोग किया। मैंने कहा कि मैं और तू दिन समाप्त हो जाने पर सोवेंगे आनन्द में, मैं 'मैं' में और तू 'मुझ में।' अतः तू ही अब सोच कि सिवा 'दण्ड' अस्त्र के और क्या उपाय मेरे पास रहा ?"

मनुआँ कुछ सशङ्कित होकर बोला—इस अस्त्र का प्रयोग कैसे होता है ?

"दण्ड का प्रयोग 'मार' ही है। मैं तुझे मारूँगा। तभी ठीक मार्ग पर तू आएगा।"

मनुआँ कुछ भयभीत-सा होकर बोला—कैसे मारेंगे ?

"मारूँगा। सुन, जब तू घूमने जाएगा, मैं नहीं जाने दूँगा। तुझे इतना काम दे दूँगा कि तू स्वयं निर्बल होकर घूमने के योग्य नहीं रहेगा। जब कोई वस्तु तू खाने को मांगेगा, मैं उसके विरुद्ध ही खाने को दूँगा, जैसे मिठाई की इच्छा करेगा, तो खटाई जबर्दस्ती खिलाऊँगा। जब कुछ सुनना चाहेगा, तो मैं उस स्थान पर नहीं जाने दूँगा। फल यह होगा कि तू भय के मारे, मेरे वश में हो जाएगा।"

मनुआँ घबड़ाकर कहने लगा—मेरे स्वामी, मुझ पर इस अस्त्र को न चलाइए। मैं आपकी इच्छानुसार ही करूँगा, परन्तु क्षमार्थी हूँ। कुछ प्रश्न करने की आज्ञा दीजिए।

"हाँ, अवश्य। मैं विवश होकर ऐसा कह गया। सच में, तू मेरा ही है। मैं तुझे प्रसन्न भी रखना चाहता हूँ। इसी में मेरा भी 'कल्याण' है।"

मनुआँ कुछ मुसकराया और बोला—मैंने अज्ञानता में ही आपको सब उत्तर दिए। कृपया यह बतलाइए कि आपने तो अभी यह कहा था कि घूमने - फिरने, देखने - सुनने के आप विरुद्ध नहीं। फिर भला आपकी आज्ञानुसार कार्य करने से, उन बातों का समय कहाँ मिलेगा ?

"मैं तो बार-बार कह चुका हूँ। तूने सब बातें भली-भाँति समझीं नहीं। मैं तुझे सब समझा दूँगा और आशा है कि तू समझ कर प्रसन्न हो जाएगा। यही मेरा 'ध्येय' भी है कि तुझे सदा प्रसन्न रख कर ही सब कार्य करूँ। सुन, यदि थोड़े समय के लिए भी, यदि तूने अपनी चञ्चलता छोड़ दी, तो मैं तेरी सहायता से थोड़े ही परिश्रम से चार 'फल' प्राप्त कर लूँगा।"

"कौन से चार फल ?"—**बड़ी उतावली के साथ मनुआँ बोला**।

"चार फलों के नाम हैं—१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम और ४ मोक्ष।"

मनुआँ फिर बोला—ये फल किसके पास हैं ? वह इसे कैसे दे देता है ?

"ये फल उस दया-निधि के पास हैं, जो तेरे सच्चे भाव को देखकर ही प्रसन्न हो जाता है। मुझे और तुझे केवल उसको 'विश्वास' दिलाने में ही देरी लगेगी, उसको देने में नहीं। उस दया - निधि को हम लोग **'हरि ॐ', परमात्मा** तथा **ईश्वर, रहीम, गॉड** आदि कहकर पुकारते हैं।

मनुआँ बोला—क्या सभी को देता है ? यदि सभी को देता है, तो उसका भण्डार खाली नहीं होता ?

"हाँ, सभी को देता है। जो श्रद्धा से, **विश्वास** से, **एकाग्र मन** से माँगते हैं, उन सभी को। उसका भण्डार न कभी खाली हुआ है और न होगा।"

मनुआँ बोला—तो और लोगों ने अब तक ले लिए होंगे ?

"ले भी लिए और नहीं भी। देख, माँगनेवाले बहुत हैं परन्तु अधिकतर श्रद्धा से, **विश्वास** से और **एकाग्र** होकर **एकान्त** में नहीं माँगते। ढोंगी से उसको चिढ़ है।"

मनुआँ बोला—ढोंगी का अर्थ क्या है ? ढोंगी किसको कहते हैं ?

"मैं इसके बारे में अधिक न कहूँगा, कारण मुझे किसी को अप्रसन्न नहीं करना है। ढोंगी उसे कहते हैं, जो तुझसे कहता है—'चाहे जहाँ जा, चाहे जैसा काम कर।' अन्य लोगों को दिखलाने के लिए ऐसे काम और बातें करता है, मानों उस दया-निधि का वह सच्चा प्रेमी है। यह नहीं सोचता कि उस घट-घट-वासी दया-निधि को ऐसे ढोंग समझने में देरी नहीं लगती। ऐसे ढोंगी से वह कभी भी प्रसन्न नहीं होता। मनुआँ, इसलिए यह उचित है कि तुझे किसी-न-किसी प्रकार 'वश' में करे। तू ही 'दृष्टि' को उस दया-निधि के मुखारविन्द पर चिपकानेवाला तथा 'पुकार' को उसके कानों तक पहुँचानेवाला है। यदि कोई यह सोचता है कि तू बड़ा सीधा है और तू स्वयं एक-न-एक दिन 'वश' में हो जाता है, तो यह उसकी भूल है। तुझे तो कभी फुसलाकर, कभी समझाकर तथा कभी दण्ड देकर या कभी दण्ड की धमकी देकर वश में करना चाहिए।"

मनुआँ कुछ व्यग्र मन से बोला—स्वामी, मुझे क्या काम करना पड़ेगा ?

"देख, जिस दिन मुझे विश्वास हो जाएगा कि तू मेरे 'वश' में है, उसी दिन से मैं समय नियत कर लूँगा। यह मुझ पर निर्भर होगा। प्रातः-काल, सायं-काल तथा रात्रि में, **नियत समय** पर आसन लगाकर प्रति-दिन बैठा करूँगा। बैठने के प्रथम जल से हाथ-पैर, मुँह धो लिया करूँगा। चाहे 'स्नान' ही कर लूँ परन्तु सम्भव है कि ऋतु के कारण, शारीरिक कष्ट तथा अन्य बाधाओं के कारण 'स्नान' न कर सकूँ। उस समय हाथ-मुँह धो लूँगा। यदि इतना भी करने में असमर्थ हुआ, तो बिना यह सब कुछ किए ही बैठ जाऊँगा। कभी-कभी ऐसा भी समय आ सकता है कि बैठने में भी असमर्थ रहा, तो उस समय लेटे-लेटे ही **'नित्य-कर्म'** करूँगा। उस कर्म के करने में तू अपनी चञ्चलता को त्याग कर मेरी सहायता करना।"

मनुआँ बोला—सहायता मैं कैसे करूँगा ?

"तुझे मेरे शब्दों के साथ उस दया-निधि के चरणारविन्दों तक जाना पड़ेगा।"

मनुआँ बोला—यदि आपके शब्द मेरी पहुँच के बाहर हुए ?

"नहीं। मैं स्वयं ऐसे शब्द न निकालूँगा, जिनको तू न पहुँचा सके। जिनके कानों तक मेरे शब्द तुझे ले जाना पड़ेगा, वह हर स्थान में—यहाँ तक कि हर कण में पूर्ण रूप से व्याप्त है।"

मनुआँ बोला—जब वे हर स्थान में, हर कण-कण में हैं, तो आप ही क्यों नहीं पहुँचा देते ?

"यदि मैं स्वयं पहुँचा सकता, तो तुझसे इतनी झड़प क्यों लेता ? इसमें कारण है। मैं उदाहरण देकर तुझे समझा दूँगा। सुन, कुछ वर्ष हुए एक कालिज में वार्षिक सङ्गीतोत्सब हुआ। उसमें शहर के सभी बड़े-बड़े सज्जन गए। देश के सु-विख्यात गायक उपस्थित हुए। गायकों ने तानपूरे उठाए और

गाना आरम्भ कर दिया। सभी ने पक्के गाने गाए। सुर, लय, ताल की कमी न थी। मैंने देखा, लोग आते-जाते रहे। बीच में, बातें भी करते रहे। कुछ लोग कहते थे, चलो बाहर पान खाकर आ जाएँ। संगीतज्ञ व्यासजी का गाना सुनेंगे। अन्त में, व्यासजी की बारी आई। सभी लोग सजग हो उठे। गाना गाया, वही अपना मधुर गाना—**'बन में चरावत गइयाँ।'** सभी लोगों ने सुना और वाह-वाह करने लगे। कारण क्या था ? गाने में स्वर की वह मधुरता थी, जिससे लोग अपने कान न हटा सके। यही बात है। तू नहीं जानता, मेरे शब्दों में तू वह मधुरता भर देगा कि वह अवश्य सुनेगा।"

मनुआँ बोला—क्या वह शब्दों में मधुरता होने पर ही सुनता है।

"नहीं, यह बात नहीं। वह दीन-बन्धु दीन-नाथ है। वह सबकी सुनता है। भेद इतना ही है कि **जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसे देय।** वह सर्व-श्रेष्ठ न्यायाधीश है। जो उसको विश्वास और श्रद्धा से बुलाएगा, उसकी अच्छी तरह सुनेगा।"

मनुआँ ने पूछा—जो श्रद्धा और विश्वास से नहीं बुलाते, उनकी क्या वह नहीं सुनता ?

"सुनता क्यों नहीं। वह तो सबका पिता है। पिता, सब पुत्रों को चाहता है। सबकी रक्षा करता है। चार फल, जो मैंने बतलाए हैं, उसी को देता है, जो उसके मुखारबिन्द की ओर श्रद्धा और विश्वास से, तुझे अपने साथ ले, टकटकी बाँधकर बैठ जाता है।"

मनुआँ फिर बोला—मेरे स्वामी, मुझे आपने भ्रम में डाल दिया। कभी आप कहते हैं कि मुखारविन्द की ओर टकटकी बाँध कर बैठना होगा; कभी कहते हैं, उसके चरणारविन्द तक मैं आपके शब्द पहुँचा दूँ। आपने कहा कि मैं आपके शब्दों में मधुरता भर दूँगा। इसका क्या अर्थ है ?

"तेरा यह प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। तू अब सब बातें समझने का प्रयत्न कर रहा है। मुझे अब विश्वास हो गया कि मुझे तेरी सहायता अवश्य मिलेगी। ध्यान-पूर्वक सुन। तुलसीदासजी ने कहा है—**'बिनु पग चलै, सुनै बिन काना। बिन कर कर्म करै विधि नाना।'** वास्तव में वह दीन-नाथ **निराकार है।** उसका कोई स्वरूप नहीं। तब भी, उसके सारे कार्य **साकार** के से ही होते हैं। वह हर कण में पूर्ण रूप से व्यापक है। जब हर कण में वह व्यापक है, तो वह मूर्तियों में भी है। जब मूर्तियों में है, तो किसी मूर्ति को लेकर बैठना पड़ेगा। मूर्ति के वही अङ्ग हैं, जो हम लोगों के हैं। जब सब अङ्ग हैं, तो उसके चरणारविन्दों तक तू मेरी अर्जी पहुँचा सकता है। मुखारविन्द की ओर टकटकी बाँधकर मैं और तू बैठ सकते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। साथ-साथ तुझे यह भी बतला दूँ कि यदि वह साकार होने की इच्छा करे, तो वह साकार भी हो सकता है।"

मनुआँ बोला—वह जब निराकार है, जैसा आप बतला चुके हैं, तब मूर्ति कैसी ?

"ठीक है, मूर्ति नहीं होनी चाहिए परन्तु जब वह हर कण में है, तब मूर्ति बना लेने में कोई दोष नहीं, अपितु सुविधा-पूर्ण एवं युक्ति-युक्त है।"

मनुआ बोला—अच्छा, मान लिया कि मूर्ति हो सकती है परन्तु मनुष्य की ही क्यों ? वह सबका पिता है; गाय, भैंस, चींटी—यहाँ तक कि हर कण का। अतः **किसी भी रूप की मूर्ति** बन सकती है। इन बातों का क्या उत्तर है ?

"इसका उत्तर ही क्या ! तूने जो प्रश्न किया, वही उत्तर है। **किसी रूप की मूर्ति बना सकते हैं और उसको ईश्वर की ही मूर्ति मान सकते हैं।** युक्ति-पूर्ण केवल इतना ही है कि प्राणी-मात्र अपने ही रूप को अच्छा समझता है। अतः मनुष्य ने अपने ही रूप में ईश्वर की अधिकतर मूर्तियाँ बनाई हैं।"

मनुआँ—जब ऐसी बात है, तब मूर्ति का झंझट ही क्यों पाला जाय ? वह तो **'बिनु पग चलै, सुनै बिनु काना'** है। उसे यों हीक्यों न पुकारा जाए ? वह तो सुन ही लेगा।

"इसमें भी कोई सन्देह नहीं, परन्तु यह सब झंझट इसलिए किया गया कि तेरा स्वभाव बच्चों की भाँति है। बच्चों को **'खिलौने'** अच्छे लगते हैं। **'खिलौना'** ले दिया। बच्चा उससे प्रेम करने लगता है। उससे बात करने लगता है। यहाँ तक सब कुछ भूलकर खिलौने को खाने के समय, यहाँ तक कि सोने के समय भी साथ रखने लगता है। बिना उस खिलौने के उसे और कोई चीज अच्छी नहीं लगती। यदि तू यह सब भली प्रकार समझ ले, तो तुझे किसी मूर्ति के सामने न बैठना पड़ेगा। तू उसको हर कण में देखेगा। ऐसा करने से ही मेरा और तेरा 'कल्याण' हो जाएगा।"

मनुआँ हँसा और बोला—आपने तो पहेली-सी बुझाई। भली-भाँति सब बातों को समझ गया। आप इतना और बतला दीजिए कि मेरा और आपका कल्याण कैसे होगा ?

"सुन और समझ। समुद्र में होता है पानी। पानी में होता है नमक, परन्तु दीखता नहीं। वह नमक पानी में इस भाँति मिला होता है कि उसका नाम, रूप, उसकी चाल, उसकी चमक और दमक या शक्ति सब पानी की ही भाँति होती है। जब पानी उससे अलग हो जाता है, सूर्य की किरणों द्वारा वाष्प बन कर उड़ जाता है, तब नमक रह जाता है। जब अकेला नमक रह जाता है, तो उसका नाम, रूप, चाल, चमक-दमक तथा शक्ति पानी की सी नहीं रहती।

"फिर क्या होता है ? नमक बेचारा भाँति-भाँति के कष्ट सहता है। यदि उस नमक को यह समझ में आ जाए कि उसका असली रूप क्या था और उस रूप में उसको क्या आनन्द था, तो उसकी इच्छा होगी उसी रूप को फिर पाने के लिए। अब उसको असली रूप फिर कैसे मिल सकता है ? उस नमक को उसी पानी में अपने को डुबोना पड़ेगा। डूबकर भी यदि उसने अपने को गलाया नहीं, तो नमक और पानी पृथक्-पृथक् ही रहेंगे। जिस समय वह अपने को पानी ही समझ कर पानी कर देगा, नमक और पानी में कोई अन्तर नहीं रहेगा, उसी समय नमक का 'मोक्ष' हो गया समझो।

"अतएव मनुआँ ! आ, तू मेरा ही है। उस दया-निधि का ही अंश मैं और तू है। अपने असली रूप को समझकर, उस दया-निधि में उसी भाँति मिल जाएँ, जैसे नमक पानी में मिल गया।

मनुआँ की आँखों में प्रेम के कारण आँसू भर आए और बोला—स्वामी ! मैं तेरे आधीन हूँ। जैसा कहोगे, वैसा ही करूँगा।

"अच्छा, एक और बात बतला दें क्योंकि तू अब सब कुछ समझ गया है। जैसा तूने अभी कहा था, तू कहाँ घूमना चाहता है और मैं तेरे साथ कहाँ जाऊँ ?"

मनुआँ लज्जित होकर बोला—आप मुझे अधिक लज्जित न करें। अब मैं सब समझ गया। कहीं नहीं जाना है। समय व्यर्थ न खोइए। यहीं बैठ जाइए; मैं यथा-शक्ति आपको सहायता दूँगा।

"मनुआँ, मुझे आज मालूम हुआ कि तू बड़ा ही सज्जन है। तुझे लोग व्यर्थ ही में दुष्ट कहते हैं। कारण इसका यह है कि ऐसे लोग समझाना नहीं जानते। तुझे दुष्ट कहकर, संतोष कर लेते हैं। मैंने यहाँ तक देखा कि यदि कोई ऐसे मनुष्यों से कहता है कि पहले मनुआँ को वश में करो, तो बिना सोचे-समझे कह बैठेंगे—'महाराज, मेरे वश की बात नहीं। बहुतेरा समझाया, मनुआँ नहीं मानता। वह बड़ा ही दुष्ट और चञ्चल है।' इसी कारण तू ऐसे लोगों से और भी चिढ़ जाता है। खैर, जाने दो इन बातों को। मनुआ, मैं तुझसे बहुत ही प्रसन्न हो गया। तेरे प्रश्न तथा उत्तर—उचित ही हुए। मैं अब किसी दिन तुझे भली-भाँति समझा दूँगा कि क्या करना चाहिए।"

असत्य से सत्य की ओर

• श्री के० जया, ३२ नार्थ कार स्ट्रीट, आलवार, तिरुनगरी (तमिलनाडु)

यह दृश्यमान एवं अदृश्य-मान चराचर जगत् परमात्मा की लीला - विभूति के अन्तर्गत माना गया है। इस जगत् में सभी चेतन-वर्ग सदा-सर्वदा सुखी रहना पसन्द करते हैं और सभी मनो-कामनाओं की पूर्ति चाहते हैं, परन्तु वैसा कभी भी होता नहीं। सुख का मतलब ही दुःख का अभाव है। अतः जब तक दुःख के बारे में जानकारी नहीं मिलती, तब तक सुख का भोगना भी असम्भव है। दिन-रात, पुण्य-पाप, ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, ऐश्वर्य - अनैश्वर्य, वैराग्य - अवैराग्य आदि परस्पर आश्रित हैं अर्थात् एक साथ जुड़े हुए हैं। सुख भी दुःख के बिना मिलना या भोगना असम्भव है। जो कड़ी धूप में बाहर घूम-कर अपने घर आता है और एक गिलास ठण्डा पानी पीता है, वही पानी का महत्त्व समझता है। अतः सुख ढूंढ़ कर इधर-उधर दौड़ - धूप करने से पहले दुःख भोगने के लिए भी तैयार रहना परमावश्यक है।

इस प्रकार **सत्य-स्वरूप परमात्मा** की प्राप्ति के लिए **असत्य के स्वरूप** को भी जानना चाहिए। **काम, क्रोध और लोभ**—ये तीनों असत्य के स्वरूप हैं। अगर आप ये तीनों छोड़ दें, तो परमात्मा की कृपा आपके ऊपर बरसेगी। ये तीनों छोड़ना असम्भव ही है। अतः इन तीनों दुर्गुणों से मुक्ति पाने के लिए आचार्य की कृपा अनिवार्य है। अर्ध-नारीश्वर ऋषि का शुभ - नाम आप जानते ही होंगे। उन्होंने इन दुर्गुणों से मुक्ति पाने के लिए अर्थात् असत्य से सत्य की ओर जाने के लिए एक सिद्ध - मन्त्र का आविष्कार किया। **'ऋषि'** का अर्थ ही **मन्त्र - द्रष्टा** होता है। अतः **'मन्त्र'** सत्य - स्वरूप हैं, नित्य हैं। 'मन्त्र' का जप कर हम सत्य-स्वरूप परमात्मा के दर्शन पा सकते हैं एवं सदा सुखी रह सकते हैं। विशेष रूप से **'धनुर्मास'** में इस मन्त्र का जप करना शीघ्र फल-प्रद होता है—

ॐ हरिहर-पुत्राय पुत्र-लाभाय, शत्रु-नाशनाय, अर्थ-लाभाय, मद-गज-वाहनाय, महा-शास्त्रे नमः स्वाहा।

इस मन्त्र में **'पुत्र-लाभाय'** से काम, **'शत्रु - नाशनाय'** से क्रोध और **'अर्थ-लाभाय'** से लोभ की ओर सङ्केत मिलता है। वह असङ्केत असत्य हैं। 'पुत्र - लाभाय' से ज्ञान की प्राप्ति, 'शत्रु - नाशनाय' से अज्ञान से मुक्ति तथा 'अर्थ-लाभाय' से निरन्तर भक्ति की ओर जो सङ्केत आचार्य द्वारा मिलता है, वही सत्य-स्वरूप है। इस मन्त्र के अन्य पदों का अर्थ तथा अनुष्ठान - क्रम आदि अपने - अपने आचार्यों द्वारा साधक लोग प्राप्त करें, तभी मन्त्र-सिद्धि मिल सकती है।

असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा, ततः सत्यं प्रकाश्यताम्।

कौल-कल्पतरु चण्डी

'चण्डी' **मासिक पत्रिका** की विशेषता यह है कि यदि आप इसे ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे, तो आपको **हिन्दू-धर्म के 'व्यावहारिक पक्ष'** को समझने में बड़ी सरलता होगी। 'हिन्दू - धर्म' केवल एक सिद्धान्त या दर्शन मात्र नहीं है। उसका **ज्ञान-मय क्रियात्मक पक्ष** भी है और वही वास्तविक महत्त्व-वाला है। अतः निवेदन है कि **'चण्डी' मासिक पत्रिका** का सदस्य आज ही बनें।

भारत-वर्ष के इक्यावन शक्ति-पीठ

[**'चण्डी'** की एक सम्मान्या सदस्या श्रीमती दामिनी काटजू ने देश में अवस्थित ५१ शक्ति-पीठों के नाम एवं उनके पते जानने की इच्छा प्रकट की है। अतः यह एक प्राचीन तालिका कुछ संशोधनों के साथ प्रकाशित की जा रही है। विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि जो इन **'शक्ति-पीठों'** के सम्बन्ध में अद्यतन सूचना दे सकते हों, वे कृपया विस्तार से लिखने की कृपा करेंगे। **'शक्ति-पीठ'** का विवरण इस प्रकार लिखा जाना चाहिये कि इसे पढ़कर यदि कोई उस **'पीठ'** में जाना चाहे, तो उसे किसी कठिनाई का अनुभव न हो। **'शक्ति-पीठ'** से सम्बन्धित मार्ग-दर्शक मान-चित्र (नक्शा) यदि भेज सकें, तो उसे भी सधन्यवाद प्रकाशित किया जायगा।—सं०]

अङ्ग-प्रत्यङ्ग	शक्ति-पीठ का नाम	स्थान
१ पर-ब्रह्म-रन्ध्र	हिङ्गलाज	कराची से ६० मील, पाकिस्तान
२ मुकुट	विमला देवी	जिला बोगड़ा, बंगला देश
३ शिर के बाल	श्रीराधा जी	बरसाना, जिला मथुरा, उत्तर प्रदेश
४ मस्तक	दुर्गा देवी	बाँसवाड़ा, राजस्थान
५ नेत्र	महा-लक्ष्मी	कोल्हापुर, महाराष्ट्र
६ भृकुटि	चैनाम्बा देवी	शाहुकार पेट, मद्रास, तमिलनाडु
७ दाहिना कान	भीमा देवी	कोयम्बटूर, मद्रास, तमिलनाडु
८ बाँयाँ कान	कुमारी देवी	बिलासपुर, मध्य प्रदेश
९ कर्ण-फूल	विशालाक्षी	वाराणसी, उत्तर प्रदेश
१० नासिका	उग्र-तारा	सुनन्दा नदी-तट-पर, बँगला देश
११ मुख	भ्रमराम्बा देवी	श्रीशैल पर्वत पर, मध्य प्रदेश
१२ ऊर्ध्व ओष्ठ	अवन्तिका	नर्मदा-तट पर, मध्य प्रदेश
१३ अधरोष्ठ	फुल्लरा देवी	अहमदपुर-कटवा लाइन पर लामपुर स्टेशन
१४ ठोडी	भद्रकाली मन्दिर	नासिक पञ्चवटी, महा-राष्ट्र
१५ ऊर्ध्व दन्त-पंक्ति	नारायणी देवी	शुचीन्द्रम, कन्या-कुमारी से ८ मील, तमिल०
१६ अधो दन्त-पंक्ति	बाराही देवी	पञ्च-सागर
१७ जिह्वा	ज्वाला-मुखी	जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश
१८ दाहिना कपोल	गण्डकी देवी	मुक्तिनाथ, गण्डकी-उद्गम पर, नेपाल

१९ बाँयाँ कपोल	हरि-सिद्ध देवी	उज्जैन, मध्य प्रदेश
२० कण्ठ (ग्रीवा)	वैष्णवी देवी	जम्मू-कश्मीर
२१ गले का हार	पद्मावती देवी	तिरुपति स्टेशन से ३ मील, तमिलनाडु
२२ हाथ की अँगुलियाँ	ललिता देवी	अलोपी, चण्डी-कार्यालय के पास, प्रयाग-राज
२३ दाहिनी हथेली	विन्ध्य-वासिनी	विन्ध्याचल, जिला मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश
२४ बाँई हथेली	दाक्षायणी	मानसरोवर (कैलाश), हिमालय
२५ दाहिनी भुजा	भवानी देवी	सीता-कुण्ड स्टेशन से ३ मील, चटगाँव, बं०
२६ बाँई भुजा	पाटेश्वरी देवी	देवी-पाटन, जिला गोंडा, उत्तर प्रदेश
२७ छाती	त्रिपुर-सुन्दरी	वैद्यनाथ धाम, बिहार
२८ कंगन	मङ्गल चण्डी	स्यालदह से गोबरडांग, चण्डीतला, बङ्गाल
२९ दोनों कलाइयाँ	गायत्री देवी	पुष्कर के पास पर्वत पर, राजस्थान
३० दाहिना स्तन	शारदा देवी	मैहर स्टेशन 'सतना' से २२ मील, म० प्र०
३१ बाँयाँ स्तन	विश्वमुखी देवी	जालन्धर, पञ्जाब
३२ नाभि	भीमासुरी (विमला)	जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
३३ पेट	अम्बिका देवी	गिरनार, गुजरात
३४ पीठ	कन्या-कुमारी	तिरुनेलवेली ६० मील दक्षिण, तमिलनाडु
३५ दाहिना नितम्ब	शोणाक्षी नर्मदा देवी	अमरकण्टक, सोन-उद्गम के पास, म. प्र.
३६ बाँयाँ नितम्ब	महा-काली	काली-घाट, कलकत्ता, बङ्गाल
३७ योनि	कामाख्या देवी	गौहाटी से २ मील, असम
३८ उदरनाल	ललिता देवी	नैमिषारण्य, जिला सीतापुर, उ० प्र०
३९ दाहिनी जाँघ	जयन्ती देवी	शिलाङ्ग से ३३ मील, मेघालय
४० बाई जाँघ	तुलजा भवानी	अजन्ता गुफा से २२ मील, महाराष्ट्र
४१ दोनों घुटने	गुह्येश्वरी देवी	बागमति-तट पर, काठमाण्डू, नेपाल
४२ पैर का कड़ा	इन्द्राक्षी	लङ्का देश में
४३ दाहिने पैर की अँगुली	भ्रामरी देवी	शालवाड़ी ग्राम, जलपाई गुड़ी, बङ्गाल
४४ बाँएँ पैर की अँगुली	अर्बुदा देवी	माउण्ट आबू पर, राजस्थान
४५ पैर (गुल्फ)	भद्र-काली	कुरु-क्षेत्र, हरियाणा
४६ दाहिने पैर का अँगूठा	भूत-धातृ	क्षीर-सागर, बर्दवान से २० मील, बङ्गाल
४७ बाएँ पैर का अँगूठा	मीनाक्षी देवी	मदुरै, तमिलनाडु
४८ दाहिने पैर का तलुवा	त्रिपुर-सुन्दरी देवी	तिरुतन्नो, मद्रास, तमिलनाडु
४९ बाँएँ पैर का तलुवा	योग-माया देवी	उरीचूर, जिला कोचीन, केरल
५० अस्थि-पञ्जर	कामाक्षी मन्दिर	देव-गर्भा, शिव-काञ्ची, तमिलनाडु
५१ शरीर की छाया	छाया-पीठ, ब्रह्म-कला	तिरुचिरा-पल्ली, तमिलनाडु

'चण्डी' के ५१ वें वर्ष [अप्रैल, ९२] से प्रकाशित

अभूत-पूर्व 'प्रयोग'-साहित्य

साधनमाला

[वैशाख-अङ्क (मई, ९३) से आगे]

(१०५)

श्री महा-विपरीत–प्रत्यंगिरा स्तोत्र

प्रस्तुत-कर्त्ता : श्री पं० कैलाश शर्मा, श्रीद्वारकाधीश मन्दिर, मेलखेड़ा–४५८८८३ (म० प्र०)

[गताङ्क में श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यंगिरा स्तोत्र का विधान प्रकाशित हुआ था। इस स्तोत्र के मूल स्तोत्र का एक पाठान्तर हमारे पास है। इसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वान् बन्धुओं से निवेदन है कि यदि कोई और पाठान्तर हो, तो उसे भी भेजने की कृपा करेंगे। साथ ही सभी पाठान्तरों को देखकर एक प्रामाणिक क्रम का अनुसन्धान करने की कृपा करें।—सं०]

पूर्व-पीठिका, विनियोग, ऋष्यादि-न्यास, कर-न्यास आदि हेतु कृपया 'चण्डी' मई ९३, पृ० ४९-५० देखें।

।। मूल स्तोत्र पाठ ।।

ॐ नमो विपरीत-प्रत्यङ्गिरायै सहस्रानेक-कार्य-लोचनायै कोटि-विद्युज्जिह्वायै महा-व्यापिन्यै संहार-रूपायै जन्म-शान्ति-कारिण्यै। मम स-परिवारकस्य भावि-भूत - भवच्छत्रून् स-दाराऽपत्यान् संहारय संहारय, महा-प्रभावं दर्शय दर्शय, हिलि हिलि, किलि किलि, मिलि मिलि, चिलि चिलि भूरि भूरि, विद्युज्जिह्वे ! ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, ध्वंसय ध्वंसय, प्रध्वंसय प्रध्वंसय, ग्रासय ग्रासय, पिब पिब, नाशय नाशय, त्रासय त्रासय, वित्रासय वित्रासय, मारय मारय, विमारय विमारय, भ्रामय भ्रामय, विभ्रामय विभ्रामय, द्रावय द्रावय, विद्रावय विद्रावय, हूं-हूं फट् स्वाहा।

हूं-५ ह्रीं-५ क्लीं-५ ॐ-५ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! हूंलं ह्रींलं क्लींलं ॐलं फट् फट् स्वाहा। हूं लं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स - परिवारकस्य यावच्छत्रून् देवता-पितृ-पिशाच-नाग-गरुड़-किन्नर-विद्याधर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस लोक-पालान् ग्रह-भूत-नर-लोकान्

स-मन्त्रान् सौषधान् सायुधान् स-सहायान् पाणौ छिन्दि छिन्दि, भिन्धि भिन्धि, निकृन्तय निकृन्तय, छेदय छेदय, उच्चाटय उच्चाटय, मारय मारय, तेषां साहङ्कारादि-धर्मान् कीलय कीलय, घातय घातय, नाशय नाशय, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! स्फ्रें स्फ्रेत्कारिणि ! ॐ ॐ जं५, ॐ ठः ५ मम स-परिवारकस्य शत्रूणां सर्वाः विद्याः स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, हस्तौ स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, मुखं स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, नेत्राणि स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, दन्तान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, जिह्वां स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, पादौ स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, गुह्यं स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय,स-कुटुम्बानां स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, स्थानं स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय सम्प्राणान् कीलय कीलय, नाशय नाशय, हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ऐं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा । मम स-परिवारकस्य सर्वतो रक्षां कुरु कुरु, फट् फट् स्वाहा ह्रीं-५ ।

ऐं ह्रू ह्रीं क्लीं हूं सौं विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य भूत-भविष्यच्छत्रूणामुच्चाटनं कुरु कुरु, हूं हूं, फट् फट् स्वाहा, ह्रीं-५ वं-५ लं-५ रं-५ यं-५ ॐ-५ नमो भगवति, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे, दुष्ट-चाण्डालिनि, त्रिशूल-वज्रांकुश-शक्ति-शूल-धनुः-शर-पाश-धारिणि, शत्रु-रुधिर-चर्म-मेदो-मांसास्थि-मज्जा-शुक्र-मेहन-वसा-वाक्-प्राण - मस्तक-हेत्वादि-भक्षिणि, पर-ब्रह्म-शिवे, ज्वाला - दायिनि, ज्वाला - मालिनि, शत्रूच्चाटन-मारण-क्षोभण-स्तम्भन-मोहन-द्रावण-जृम्भण-भ्रामण-रौद्रण-सन्तापन-यन्त्र-मन्त्र-तन्त्रान्तर्याग-पुरश्चरण-भूत-शुद्धि-पूजा-फल-परम-निर्वाण-हरण-कारिणि, कपाल-खट्वाङ्ग-परशु - धारिणि ! मम स-परिवारकस्य भूत-भविष्यच्छत्रून् स-सहायान् स-वाहनान् हन हन, रण रण, दह दह, दम दम, धम धम, पच पच, मथ मथ, लङ्घय लङ्घय, खादय खादय, चर्वय चर्वय, व्यथय व्यथय, ज्वरय ज्वरय, मूकान् कुरु कुरु, ज्ञानं हर हर, हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

ह्रीं-७ हूं-७ क्लीं-७ ॐ-७ विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! ह्रीं-७ हूं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् स्वाहा । मम स-परिवारकस्य कृत मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-हवन-कृतौषध-विष-चूर्ण-शस्त्राद्यभिचार-सर्वोपद्रवादिकं येन कृतं, कारितं, कुरुते, करिष्यति वा तान् सर्वान् हन हन, स्फारय स्फारय, सर्वतो रक्षां कुरु कुरु, हूं हूं फट् फट् स्वाहा । हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा ।

ॐ हूं ह्रीं क्लीं ॐ अं विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य शत्रवः कुर्वन्ति, करिष्यन्ति, शत्रुश्च, कारयामास, कारयन्ति, कारयिष्यन्ति याऽ याऽन्यां कृत्यान् तैः सार्द्धं तांस्तां विपरीतां कुरु कुरु, नाशय नाशय, मारय मारय, श्मशान-स्थानं कुरु कुरु,कृत्यादिकां

क्रियां भाव-भूत-भवच्छत्रूणां यावत् कृत्यादिकां क्रियां विपरीतां कुरु कुरु, तान् डाकिनी-मुखे हारय हारय, भीषय भीषय, त्रासय त्रासय, परम-शमन-रूपेण हन हन, धर्मावच्छिन्न-निर्वाणं हर हर, तेषां इष्ट-देवानां शासय शासय, क्षोभय क्षोभय, प्राणादि-मनो-बुद्धच-हङ्कार-क्षुत्-तृष्णाऽऽकर्षण-लयन-आवागमन-मरणादिकं नाशय नाशय, हूं हूं ह्लीं ह्लीं क्लीं क्लीं ॐ फट् फट् स्वाहा ।

क्षं हं सं षं शं । वं लं रं यं । मं भं बं फं पं । नं धं दं थं तं । णं ढं डं ठं टं । ञं झं जं छं चं । ङं घं गं खं कं । अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं । हूं-७ ह्लीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! हूं-७ ह्लीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् स्वाहा । क्षं ळं हं सं । वं लं रं यं । मं भं बं फं पं । नं धं दं थं तं । णं ढं डं ठं टं । ञं झं जं छं चं । ङं घं गं खं कं । अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं । हूं-७ ह्लीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा ।

अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं । ङं घं गं खं कं । ञं झं जं छं चं । णं ढं डं ठं टं । नं धं दं थं तं । मं भं बं फं पं । क्षं ळं हं सं षं शं । वं लं रं यं । ॐ-७ मम स-परिवारकस्य स्थाने शत्रूणां कृत्यान् सर्वान् विपरीतान् कुरु कुरु, तेषां मन्त्र-यन्त्र-तन्त्रार्चन-श्मशानारोहण-भूमि-स्थापन-भस्म-प्रक्षेपण - पुरश्चरण - होमाभिषेका-दिकान् कृत्यान् दूरी कुरु कुरु, हूं विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मां स-परिवारकं सर्वतः सर्वेभ्यो रक्ष रक्ष हूं ह्लीं फट् स्वाहा ।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः । कं खं गं घं ङं । चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं । तं थं दं धं नं । पं फं बं भं मं । यं रं लं वं । शं षं सं हं ळं क्षं । **ॐ क्लीं ह्लीं श्रीं**-७ ॐ हूं ह्लीं क्लीं ॐ विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! हूं ह्लीं क्लीं ॐ फट् स्वाहा । ॐ **क्लीं ह्लीं श्रीं**-५, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः । कं खं गं घं ङं । चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं । तं थं दं धं नं । पं फं बं भं मं । यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं । विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य शत्रूणां विपरीत-क्रियां नाशय नाशय, त्रुटिं कुरु कुरु, तेषामिष्ट - देवतादि - विनाशं कुरु कुरु, सिद्धि अपनया-पनय, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे, शत्रु - मर्दिनि ! भयङ्करि ! नाना - कृत्या - मर्दिनि, ज्वालिनि, महा-घोर-तरे, त्रिभुवन-भयङ्करि शत्रूणां मम स-परिवारकस्य चक्षुः-श्रोत्राणि पादौं -सवतः सर्वेभ्यः सर्वदा रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ।

श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वसुन्धरे ! मम स-परिवारकस्य स्थानं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ महा-लक्ष्मि ! मम स-परिवारकस्य पादौ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ चण्डिके ! मम स-परिवारकस्य जङ्घे रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ चामुण्डे ! मम स-परिवारकस्य गुह्यं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इन्द्राणि ! मम स-परिवारकस्य नाभि रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नारसिंहि ! मम स-परिवारकस्य बाहुं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वाराहि ! मम स-परिवारकस्य हृदयं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वैष्णवि ! मम स-परिवारकस्य कण्ठं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ कौमारि ! मम स-परिवारकस्य वक्त्रं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ माहेश्वरि ! मम स-परिवारकस्य नेत्रे रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ब्रह्माणि ! मम सपरिवारकस्य शिरो रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । हूं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य छिद्रं सर्वं-गात्राणि रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा ।

सन्तापिनी संहारिणी, रौद्री च भ्रामिणी तथा । जृम्भिणि द्राविणी चैव, क्षोभिणि मोहिनी ततः । स्तम्भिनी चांडशरूपास्ताः, शत्रु-पक्षे नियोजिताः । प्रेरिता साधकेन्द्रेण, दुष्ट-शत्रु-प्रमर्दिकाः ।

ॐ सन्तापिनि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् सन्तापय सन्तापय हूं फट् स्वाहा । ॐ संहारिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् संहारय संहारय हूं फट् स्वाहा । ॐ रौद्रि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् रौद्रय रौद्रय हूं फट् स्वाहा । ॐ भ्रामिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् भ्रामय भ्रामय हूं फट् स्वाहा । ॐ जृम्भिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् जृम्भय जृम्भय हूं फट् स्वाहा । ॐ द्राविणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् द्रावय द्रावय हूं फट् स्वाहा । ॐ क्षोभिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रून् क्षोभय क्षोभय हूं फट् स्वाहा । ॐ मोहिनि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रून् मोहय मोहय हूं फट् स्वाहा । ॐ स्तम्भिनि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय हूं फट् स्वाहा ।

॥ फल-श्रुति ॥

शृणोति य इमां विद्यां, शृणोति च सदाऽपि ताम् । यावत् कृत्यादि-शत्रूणां, तत्क्षणादेव नश्यति। मारणं शत्रु - वर्गाणां, रक्षणाय चात्म-परम् । आयुर्वृद्धिर्यशो-वृद्धिस्तेजो-वृद्धिस्तथैव च ॥

कुबेर इव वित्ताढ्यः, सर्वं-सौख्यमवाप्नुयात् । वाय्वादीनामुपशमं, विषम-ज्वर-नाशनम् ।।
पर-वित्त-हरा सा वै, पर-प्राण-हरा तथा । पर-क्षोभादिक-करा तथा सम्पत्-करा शुभा ।।
स्मृति-मात्रेण देवेशि ! शत्रु - वर्गाः लयं गताः । इदं सत्यमिदं सत्यं, दुर्लभा देवतैरपि ।।
शठाय पर-शिष्याय, न प्रकाश्या कदाचन । पुत्राय भक्ति-युक्ताय, स्व-शिष्याय तपस्विने ।।
प्रदातव्या महा-विद्या, चात्म-वर्ग-प्रदायतः: । विना ध्यानैर्विना जापैर्विना पूजा-विधानतः ।।
विना षोढा विना ज्ञानैर्मोक्ष-सिद्धिः प्रजायते । पर-नारी-हरा विद्या, पर-रूप-हरा तथा ।।
वायु-चन्द्र-स्तम्भ-करा, मैथुनानन्द-संयुता । त्रि-सन्ध्यमेक-सन्ध्यं वा, यः पठेद्भक्तितः सदा ।।
सत्यं वदामि देवेशि ! मम कोटि-समो भवेत् । क्रोधाद्देव-गणाः सर्वे, लयं यास्यन्ति निश्चितम् ।।
किं पुनर्मानवा देवि ! भूत-प्रेतादयो मृताः । विपरीता-समा विद्या, न भूता न भविष्यति ।।
पठनान्ते पर-ब्रह्म-विद्या स-भास्करा तथा । मातृ कांपुटितं देवि ! दशधा प्रजपेत् सुधीः ।।
वेदादि-पुटिका देवि ! मातृकाऽनन्त-रूपिणो । तथा हि पुटितां विद्यां, प्रजपेत् साधकोत्तमः ।।

मनो जित्वा जपेल्लोकं, भोगं रोगं तथा यजेत् ।
दीनतां हीनतां जित्वा, कामिनी निर्वाण-पद्धतिम् ।।

(१०६)

विद्या-प्राप्ति-प्रयोग

श्री निरंजन विजय जी महाराज की कृपा से प्राप्त

प्रस्तुत कर्त्ता : श्री चन्दूलाल गण्डालाल शाह, जामनगर (गुजरात)

(१) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वद-वद वाग्वादिनी-भगवती-सरस्वति ! मम जिह्वाग्रे वासं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—प्रति-दिन प्रातः-काल उक्त मन्त्र का १०८ बार 'जप' करे। बालकों को छोटी उम्र से इस मन्त्र का 'जप' कराए। परीक्षा, नौकरी में तो इस मन्त्र के 'जप' के द्वारा सफलता प्राप्त होती ही है, साथ ही नेतृत्व के गुण भी उत्पन्न होते हैं और समाज में प्रतिष्ठा एवं यश की प्राप्ति होती है। मन्त्र के 'जप' के साथ-साथ **'सरस्वती-चूर्ण'** का भी प्रयोग करे। **'सरस्वती-चूर्ण'** के लिए आठ जड़ी-बूटियाँ—१ गुडची, २ अपामार्ग, ३ वायविडङ्ग, ४ शङ्ख-पुष्पी, ५ बच, ६ सोंठ, ७ शतावरी और ८ ब्राह्मी को पंसारी के यहाँ से समान भाग में लेकर चूर्ण बनाएँ। चूर्ण बनाते समय उक्त मन्त्र का स्मरण करता रहे। फिर इस अभिमन्त्रित चूर्ण का नित्य सेवन करे। चूर्ण के साथ समान मात्रा में गो-घृत एवं मिश्री भी लेवे। 'चूर्ण'-सेवन के बाद यथा-शक्ति गो-दुग्ध का पान करे। छः मास तक ऐसा करने से बालकों की बुद्धि निश्चित रूप में तीव्र होती है।

(२) **ॐ ह्लीं श्रीं क्लीं वाग्वादिनी-देवी-सरस्वति ! मम जिह्वाग्रं वासं कुरु कुरु स्वाहा।**

विधि—प्रति-दिन प्रातः-काल उक्त मन्त्र का १०८ 'जप' करे। २१ दिनों तक ऐसा करने से विद्या-अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है। २१ माह तक मन्त्र का 'जप' करे, तो भाग्योदय होता है। श्वेत-वस्त्र, माला एवं आसन का प्रयोग करे। भगवती सरस्वती का श्रद्धा-पूर्वक यथा-शक्ति पूजन-स्मरण भी करे।

(१०७)

वैरि-नाशक हनुमान ग्यारहवाँ

प्रस्तुत-कर्त्ता : **पं० तापेश्वरीप्रताप मिश्र,**

मु० राजा उतरौला मार्ग, गोण्डा (उ० प्र०)

विधि : दूसरे से माँगे हुए मकान में, रक्षा-विधान, कलश-स्थापन, गणपत्यादि लोकपालों का पूजन कर हनुमान जी की प्रतिमा-प्रतिष्ठा करे। नित्य ११ या १२१ पाठ, ११ दिन तक करे। 'प्रयोग' भौमवार से प्रारम्भ करे। 'प्रयोग'-कर्त्ता रक्त-वस्त्र धारण करे और किसी के साथ अन्न-जल न ग्रहण करे।

अञ्जनी-तनय बल - वीर रन-बाँकुरे, करत हूँ अर्ज दोऊ हाथ जोरी,
शत्रु-दल सजि के चढ़े चहूँ ओर ते, तका इन पातकी न इज्जत मेरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, लेहु तेहि झपट मत करहु देरी,
मातु की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, अञ्जनी-सुवन मैं सरन तोरी ।।१
पवन के पूत अवधूत रघु-नाथ प्रिय, सुनौ यह अर्ज महाराज मेरी,
अहै जो मुद्दई मोर संसार में, करहु अङ्ग-हीन तेहि डारौ पेरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, करहु तेहि चूर लंगूर फेरी,
पिता की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, पवन के सुवन मैं सरन तेरी ।।२
राम के दूत अकूत बल की शपथ, कहत हूँ टेरि नहि करत चोरी,
और कोई सुभट नहीं प्रगट तिहूँ लोक में, सकै जो नाथ सौं बैन जोरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, लेहु तेहि पकरि धरि शीश तोरी,
इष्ट को आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, राम के दूत मैं सरन तोरी ।।३
केसरी-नन्द सब अङ्ग वज्र सों, जेहि लाल मुख रङ्ग तन तेज-कारी,
कपीस वर केस हैं विकट अति भेष हैं, दण्ड दौ चण्ड-मन ब्रह्मचारी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, करहु तेहि गर्द दल मर्द डारी,
केसरी की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।४
लीयो है आनि जब जन्म लियो यहि जग में, हर्‍यो है त्रास सुर-संत केरी,
मारि कै दनुज-कुल दहन कियो हेरि कै, दल्यो ज्यों सह गज-मस्त घेरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, हनौ तेहि हुमकि मति करहु देरी,
तेरी ही आनि तोहि सुनौ, प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।५
नाम हनूमान जेहि जानैं जहान सब, कूदि कै सिन्धु गढ़ लङ्क घेरी,
गहन उजारि सब रिपुन-मद मथन करी, जार्‍यो है नगर नहिं कियो देरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, लेहु तेही खाय फल सरिस हेरी,
तेरे ही जोर की आनि, तोहि सुनौ प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।६
गयो है पैठ पाताल महि, फारि कै मारि कै असुर - दल कियो ढेरी,
पकरि अहि-रावनहि अङ्ग सब तोरि कै, राम अरु लखन की काटि बेरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, करहु तेहि निरधन धन लेहु फेरी,
इष्ट की आनि तोहि, सुनहु प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।७

लगो है शक्ति अन्त उर घोर अति, परेऊ महि मुर्छित भई पोर ढेरी,
चल्यो है गरजि कै धर्‌यो है द्रोण-गिरि, लीयो उखारि नहीं लगी देरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, पटकौ तेहि अवनि लांगुर फेरी,
लखन की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।८
हन्यो है हुमकि हनुमान काल-नेमि को, हर्‌यो है अप्सरा आप तेरी,
लियो है अविधि छिनही में पवन-सुत, कर्‌यो कपि रीछ जै जैत टेरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, हनो तेहि गदा हठी बज्र फेरी,
सहस्त्र फन की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।९
केसरी-किशोर स-रोर बरजोर अति, सौहै कर गदा अति प्रबल तेरी,
जाके सुने हाँक डर खात सब लोक-पति, छूटी समाधि त्रिपुरारि केरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, देहु तेहि कचरि धरि के दरेरी,
केसरी की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।१०
लीयो हर सिया-दुख दियो है प्रभुहिं सुख, आई करवास मम हृदै बसेहितु,
ज्ञान की वृद्धि करु, वाक्य यह सिद्ध करु, पैज करु पूरा कपीन्द्र मोरी,
करत जो चुगलई मोर दरबार में, हनहु तेहि दौरि मत करौ देरी,
सिया-राम की आनि तोहि, सुनौ प्रभु कान दे, वीर हनुमान मैं सरन तेरी ।।११
ई ग्यारहो कवित्त के पुर के होत ही प्रकट भए,
आए कल्याणकारी दियो है राम की भक्ति-वरदान मोहीं ।
भयो मन मोद-आनन्द भारी और जो चाहै तेहि सो माँग ले,
देऊँ अब तुरन्त नहि करौं देरी,
जवन तू चहेगा, तवन ही होएगा, यह बात सत्य तुम मान मेरी ।।१२
ई ग्यारहाँ जो कहेगा तुरत फल लहैगा, होगा ज्ञान-विज्ञान जारी,
जगत जस कहेगा सकल सुख को लहैगा, बढ़ैगी वंश की वृद्धि भारी ।
शत्रु जो बढ़ैगा आपु ही लड़ि मरैगा, होयगी अङ्ग से पीर न्यारी,
पाप नहिं रहैगा, रोग सब ढहैगा, दास भगवान अस कहत टेरी ।।१३
यह मन्त्र उच्चारैगा, तेज तब बढ़ैगा, धरै जो ध्यान कपि-रूप आनि,
एकादश रोज नर पढ़ै मन पोढ़ करि, करै नहिं पर-हस्त अन्न-पानी ।
भौम के वार को लाल-पट धारि कै, करै भुइँ सेज मन व्रत ठानी,
शत्रु का नाश तब हो, तत्कालहिं, दास भगवान की यह सत्य-बानी ।।१४

प्रातः-स्मरणीय

'कौल-कल्पतरु' पूज्य शुक्ल जी की

पुण्य स्मृति में :

हिन्दी सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ

[परम पूज्य शुक्ल जी ने संस्कृत न जाननेवाले भगवती के भक्तों की सुविधा के लिए 'श्रीदुर्गा सप्तशती' का शब्दशः पद्यानुवाद किया और उसका प्रथम संस्करण (सन् १९३८) राष्ट्र-भाषा हिन्दी के 'आदि आचार्य' द्विवेदी जी को समर्पित किया। उन्होंने उस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा की। तब से सहस्रों श्री जगदम्बा-भक्त उसका पाठ कर अपने को कृत-कृत्य कर रहे हैं। कुशल कवि एवं सुलेखक श्री अमर सिंह जी ने उसी शब्दशः पद्यानुवाद के आधार पर 'सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ' को प्रस्तुत कर प्रशंसनीय कार्य किया है। पराम्बा के जो भक्त पूरी 'सप्तशती' का पाठ करने में असमर्थ है, वे इसका प्रयोग कर अपना कल्याण सहज ही कर सकते हैं—

।। श्री शिव बोले ।।

।। पूर्व पीठिका ।।

तुम हो देवी ! भक्ति-सुलभ, सब कार्य-कलापों की स्वामिनि हो।
बोलो, कलि में कार्य-सिद्धि-हित, जन को क्या उपाय करना है ?

।। श्रीदेवी बोलीं ।।

कलियुग का उत्तम-तम साधन, श्रवण करें हे देव ! ध्यान धर।
बतलाती मैं स्नेह - सहित, केवल माता की स्तुति करना है ।।

।। ध्यान ।।

जिनके श्री अङ्गों का तेजस विद्युत-सा है—
वह जो केहरि के कन्धे पर बैठीं, भीषण-सी लगती हैं।
गदा, ढाल, धनु जिनके कर-कमलों में शोभित—
तर्जनि मुद्रा, पाश, चक्र, जो खड्ग, बाण धारण करती हैं ।।

कन्याएँ ले खड्ग-ढाल जिनकी सेवा-रत—
जिनके मस्तक पर शशि से उज्ज्वल किरीट शोभा पाता है।
उन्हीं त्रि-नेत्रा अग्नि-स्वरूपा दुर्गा का मैं—
करता सादर ध्यान, मुझे उनका यह दिव्य रूप भाता है।।

॥ सात श्लोक ॥

ज्ञानी लोगों के भी चित को, बल-पूर्वक कर्षित करती।
वह भगवती महा - माया ही, मोह हेतु है ला देती ॥१
दुर्गे ! याद किए से तुम तो, जीवों का भय हरती हो,
करते हैं यदि स्वस्थ याद तो, शुभ मति उनको देती हो।
दारिद्र - दुख हरनेवाली ! कौन तुम्हारे है अतिरिक्त,
पर-उपकार हेतु रत जग में, दयार्द्र रहता है तव चित्त ॥२
सभी मंगलों की शिव-रूपा ! गौरी ! शिवा ! शरणदा !
नमस्कार तुमको नारायणि ! त्रि-नयना ! हे सिद्धि-प्रदा ॥३
शरणागत का दैन्य - दुःख से, परित्राण करनेवाली।
प्रणमन देवि ! तुम्हें नारायणि ! सबका दुख हरनेवाली ॥४
सर्व-शक्ति-अन्विता देवि हे ! सर्व स्वरूपा ! सर्वेशा।
नमस्कार तुमको हे दुर्गा ! भय से रक्षा करो महेशा ॥५
सारे रोग नाश हो करतीं, जब तुम होती हो सन्तुष्ट,
सकल अभीष्ट ध्वंस कर देतीं, हो जातीं यदि कुछ भी रुष्ट।
है लेते तेरा जो आश्रय, आती उनके विपद न पास।
हो जाते आश्रय-निकेत वे, देते सबको सदा सुपास ॥६

नाश हमारे रिपुओं का कर, सब त्रिलोक-बाधा को दूर।
हे सर्वेश्वरि! यह सब फिर भी, करना होगा काम जरूर ॥७

॥ फल-श्रुति ॥

यह स्तोत्र देवी - प्रदत्त, वैभव - कुल - दायक, सब प्रकार से रक्षा करता।
परम गुह्य यह, पाठ कराने, पठन-श्रवण द्वारा त्रिलोक की विजय दिलाता।

॥ क्षमा-प्रार्थना ॥

तेरी कृपा करे यह वन्दन सफल, पूर्ण मम हे सर्वेश्वरि !
मन्त्र-हीन है, भक्ति-हीन यह, क्रिया-हीन यद्यपि देवेश्वरि ! ॥

॥ पाठ-समर्पण ॥

यह जप तुझे समर्पित सादर, परम गुह्य-रूपिणि माँ ! मेरा।
सिद्धि प्रदान करे देवी ! वह दिव्य प्रसाद महेश्वरि ! तेरा ॥

स्व-राष्ट्र-कल्याणार्थ सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ अभियान

'चण्डी' मासिक पत्रिका द्वारा साधक बन्धुओं से अनुरोध किया गया था कि वे अपनी नित्य की साधना के पूर्व अपने एवं अपने राष्ट्र भारत के कल्याण के लिए **'सप्त - श्लोकी चण्डी का पाठ'** किया करें। प्रसन्नता की बात है कि इस अनुरोध को अनेक बन्धुओं ने स्वीकार किया। **मेहद** टोला, अलीगञ्ज, लखनऊ (उ० प्र०) से 'चण्डी' मासिक पत्रिका की सदस्या श्रीमती सरला शर्मा लिखती हैं कि—**'…मैं सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ को दैनिक पूजा-पाठ में सम्मिलित कर रही हूँ। निरन्तरता बनी रहे, इसके लिए आशीर्वाद प्रदान करें।'**

बहन श्रीमती सरला शर्मा स्वयं देवी-स्वरूपा हैं। आपको इसके लिए हमारे आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं है। आपने हमारे कार्य-क्रम को स्वीकार करके **सप्त - श्लोकी चण्डी-पाठ के अभियान** को पहले चरण में ही 'सिद्धि' प्रदान करने की कृपा की है। ऐसी बहनों, भाइयों के प्रति हम हृदय से आभारी हैं। साथ ही अन्य भाइयों एवं बहनों से प्रार्थना है कि वे भी **सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ के अभियान** में भाग लें, जिससे अधिक-से-अधिक संख्या में यह अभियान सम्पन्न हो और हमारा तथा राष्ट्र का अभीष्ट कल्याण हो।

पाठकों की सुविधा के लिए सप्त-श्लोकी चण्डी - पाठ का हिन्दी रूपान्तर 'चण्डी' के प्रस्तुत अङ्क में प्रकाशित किया गया है। जो बन्धु संस्कृत न जानते हों, अथवा जिन्हें संस्कृत पढ़ने में कठिनाई हो, वे इस हिन्दी पद्यानुवाद से लाभ उठा सकते हैं।

सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ अभियान के सम्बन्ध में यदि किन्हीं बन्धु को कोई जिज्ञासा हो, तो वे इस अभियान के संयोजकों से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

सर्वश्री प० सतीशचन्द्र उपाध्याय/ठा० अमर सिंह 'अमर'
द्वारा 'चण्डी'-कार्यालय, अजोपोबाग मार्ग, प्रयागराज (उ० प्र०)-२११००६

धार्मिक जगत की हलचल

शाक्त सम्मेलन सम्पन्न

'आज' (पटना) १ मई, ९३ में प्रकाशित समाचार

अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन प्रयाग से सम्बद्ध **बिहार शाक्त सम्मेलन, पटना** का द्वि-दिवसीय पञ्चम अधिवेशन गुरुवार को सोल्लास सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का शुभारम्भ बुधवार को पूर्वाह्न ११ बजे मङ्गलाचरण पूर्वक हुआ।

प्रथम दिवस (२८ अप्रैल, ९३) के प्रथम सत्र में प्रमुख अतिथि श्री ऋत्विजानन्द सरस्वती ने **पातञ्जलि योग-दर्शन** के अष्टाङ्ग सूत्रों का सैद्धान्तिक/व्यावहारिक परिचय कराया। द्वितीय सत्र में **तन्त्र-ज्योतिष : व्यावहारिक अन्तः सम्बन्ध** विषय पर श्रीविमलानन्द स्वामी की उपस्थिति में पटना के प्रमुख ज्योतिर्विदों—सर्वश्री विनोदचरण सिन्हा, हरजीत सिंह, दिनेशचन्द्र शर्मा, कुमार उमेशचन्द्र, रामदास, सूरजप्रसाद सिंह आदि ने अपने शोध-प्रबन्धों एवं अनुभूत विचारों से श्रोताओं का ज्ञान-वर्द्धन किया।

अधिवेशन के दूसरे दिन (२९ अप्रैल, ९३) के प्रथम सत्र में **अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन** प्रयाग के मन्त्री **कुल-भूषण पं० श्रीरमादत्त शुक्ल** ने प्रमुख अतिथि के रूप में उपस्थित शाक्त वन्धुओं को मन्त्र-साधना के व्यावहारिक पक्ष से अवगत करवाया। उन्होंने 'वर्ण-माला' द्वारा सहज जप-साधना पर प्रकाश डाला तथा अपने सार-गर्भित भाषण में **तन्त्र-शास्त्र की सामयिक उपादेयता** की विस्तृत विवेचना की।

द्वितीय दिवस के द्वितीय सत्र में ८४ वर्षीय वयोवृद्ध वैद्य-शिरो-मणि पं० **श्री कृष्णानन्द मिश्र** ने आहार-विहार के अनुशासन और अध्यात्म-परक जीवन-शैली के उन विन्दुओं की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया, जिनके द्वारा मनुष्य स्वास्थ्य, सुख, ऐश्वर्य एवं शान्ति की उपलब्धि कर सकता है। उन्होंने अनेक दैविक रहस्यों का उद्घाटन कर जन-समुदाय को मुग्ध कर दिया। श्री जगदम्बा की वन्दना के साथ सम्मेलन के अध्यक्ष **श्री वीरेन्द्र गिरि** द्वारा कृतज्ञता-ज्ञापन-पूर्वक अधिवेशन के समापन की घोषणा की गई। (अधिवेशन के विस्तृत विवरण हेतु देखें—**'सम्पादक की वाणी'** का मई,९३ अङ्क)

पर्व-सूची

ज्येष्ठ शुक्ल १३	बुधवार	२ जून, ९३	प्रदोष-व्रत
ज्येष्ठ शुक्ल १५	शुक्रवार	४ जून, ९३	चन्द्र-ग्रहण (सायं ४/३७ से रात्रि ८/१६)
आषाढ़ कृष्ण ८	शनिवार	१२ जून, ९३	श्री शीतला अष्टमी
आषाढ़ कृष्ण ११	मङ्गलवार	१५ जून, ९३	योगिनी एकादशी व्रत
आषाढ़ कृष्ण १३	शुक्रवार	१८ जून, ९३	मास शिव-रात्रि-व्रत, लक्ष्मीबाई पुण्य-तिथि
आषाढ़ कृष्ण १४	शनिबार	१९ जून, ९३	श्राद्ध की अमावास्या
आषाढ़ शुक्ल १-२	सोमवार	२१ जून, ९३	रथ-यात्रा (पुरी)
आषाढ़ शुक्ल ४	बुधवार	२३ जून, ९३	वैनायकी चतुर्थी व्रत
आषाढ़ शुक्ल ६	शुक्रवार	२५ जून, ९३	स्कन्द-षष्ठी व्रत
आषाढ़ शुक्ल १५	शनिवार	३ जुलाई, ९३	गुरु-पूर्णिमा, व्यास-पूजन

श्रीपीताम्बरा पीठ दतिया द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

हिन्दी में या हिन्दी-टीका-सहित ग्रन्थ

- श्रीस्वामी स्मृति ग्रन्थ
- ज्योतिष तत्त्व विवेक
- अथर्ववेदीय ज्योतिष
- स्वरोदय विज्ञान
- श्रीविद्या रहस्य-चिद् विलास
- पुरश्चरण पद्धति
- योग-विज्ञान-दो भाग
- वातुलनाथ सूत्र
- लेख संग्रह
- वेदान्त-प्रबोध
- घरेण्ड-संहिता
- भैरव-विज्ञान
- ईश्वर-गीता
- सिद्धान्त-रहस्य
- माण्डूक्योपनिषद्
- केनोपनिषद्
- ईशावस्योपनिषद्
- कठोपनिषद्
- मुण्डकोपनिषद्
- शाक्त-सौरभ
- हनुमत उपासना
- निगमागम समन्वय
- लघु स्तव-राज
- श्रीगुरू-तत्त्व एवं पादुका-पंचक
- स्वामी कथा-सार
- स्वामी चरित चिन्तामणि
- प्रश्नोपनिषद्
- पराप्रवेशिका
- परश्चरण
- श्रीछिन्नमस्ता नित्यार्चन
- शिव सूत्र एवं स्पन्दकारिका
- वैदिक उपदेश

मूल संस्कृत में

- श्रीबगलामुखी रहस्यम्
- शरभ तन्त्र
- श्रीमातृका-चक्र विवेक
- कामकला विलास
- महा-विद्या-चतुष्टयम्
- योग-दर्शन
- शिव-सूत्र भक्ति-सूत्रञ्च
- महा-त्रिपुर-सुन्दरी-पूजा-पद्धति
- सौन्दर्य लहरी
- श्रीविद्या-रत्न-सूत्रम्
- सप्त-विंशति-रहस्य
- श्रीतारा-कर्पूर-राज-स्तोत्रम्
- रेणुका तन्त्र
- पञ्चस्तवी
- भैरव-सर्वस्व
- देवी सहस्र-नाम-संग्रह, दो भाग
- महा-गणपति-तर्पणम्
- श्रीधूमावत्या सपर्याऽर्णवः
- दुर्लभ स्तोत्राणि

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग-६

रजि० संख्या 32981/57

ज्येष्ठ, २०५० वि०- जून, १९९३

रजि० संख्या AD~96

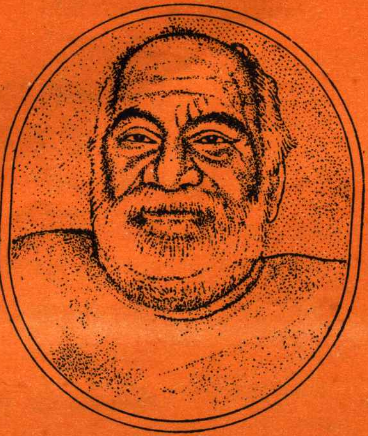

"गुरु का अर्थ गुरु का स्थूल शरीर नहीं है क्योंकि मानव शरीर चिन्मय देह नहीं है।

हिन्दु शास्त्रों में देह-पूजा के लिये स्थान ही नहीं है।

स्थूल शरीर के माध्यम से ही, सूक्ष्म की तुष्टि होती है। अतएव माता, पिता और अतिथि के शरीर सेव्य तो है किन्तु वह आराध्य नहीं है। उस शरीर में, जो दिव्य ज्ञान-ज्योति है, वही आराध्य है।'

'राष्ट्र गुरु' स्वामी जी

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६